मानव मन्दिर

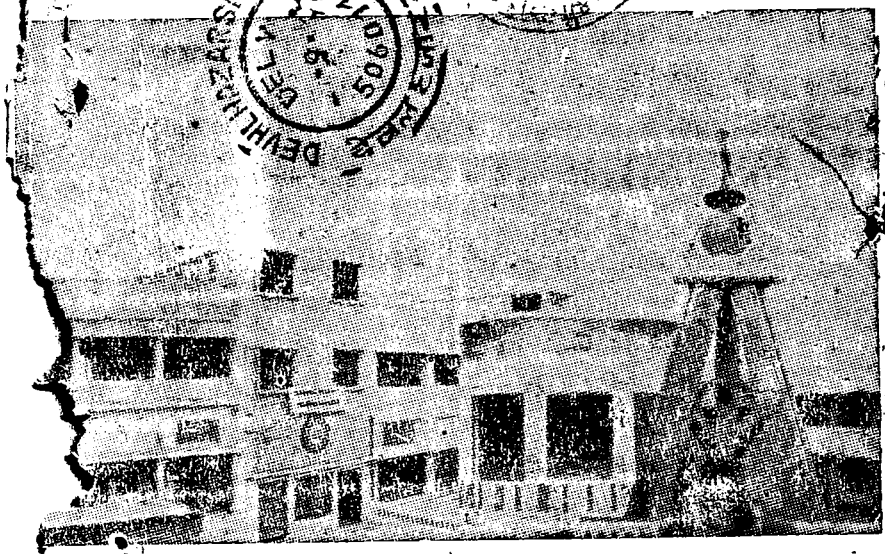

फकीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट
सुतेहरी रोड, होशियारपुर
द्वारा अमूल्य भेंट

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Prem Prakash Sharma
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Hoshiarpur
Editor's Name	Prem Prakash Sharma
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the TOTAL	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Prem Prakash Sharma hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10 Signature of Publisher

Printed and Published by : Prem Prakash Sharma at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur. for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर होशियारपुर में अगला मासिक सत्संग 15-9-96 को होगा ।

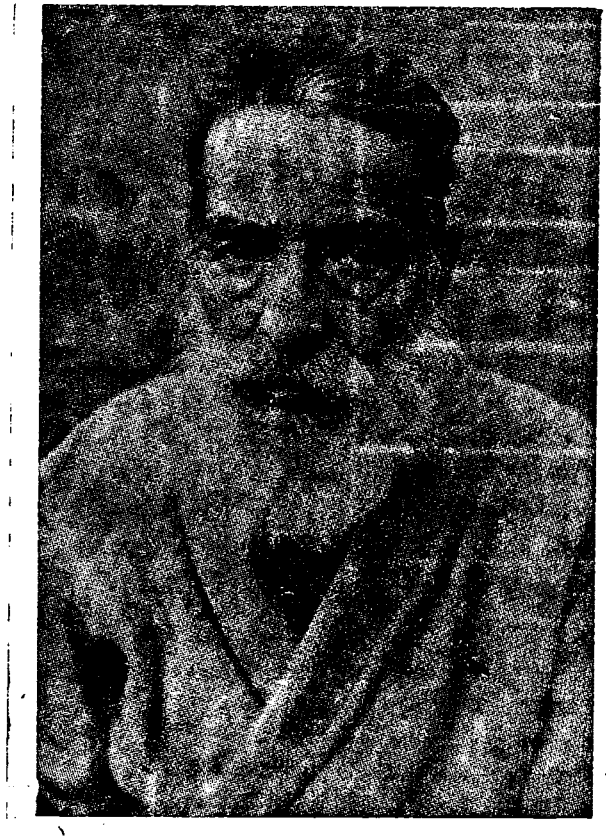

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

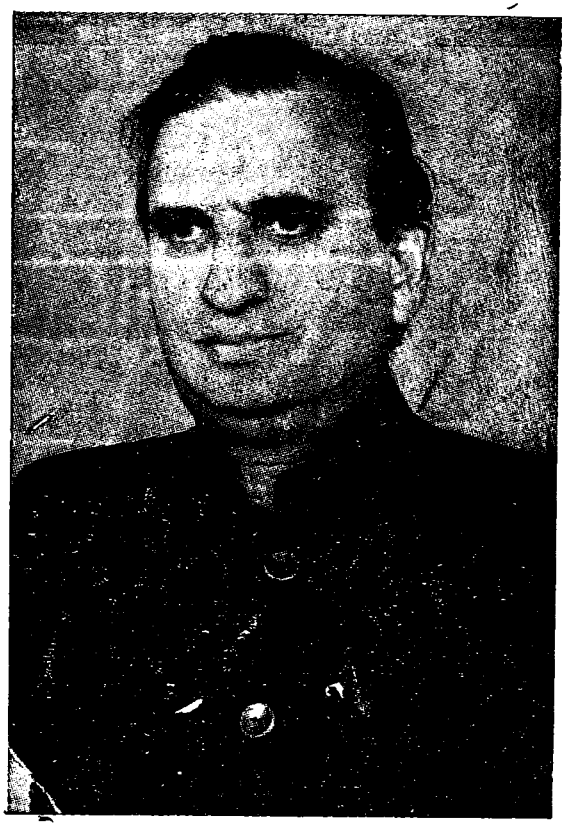

Param Sant Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

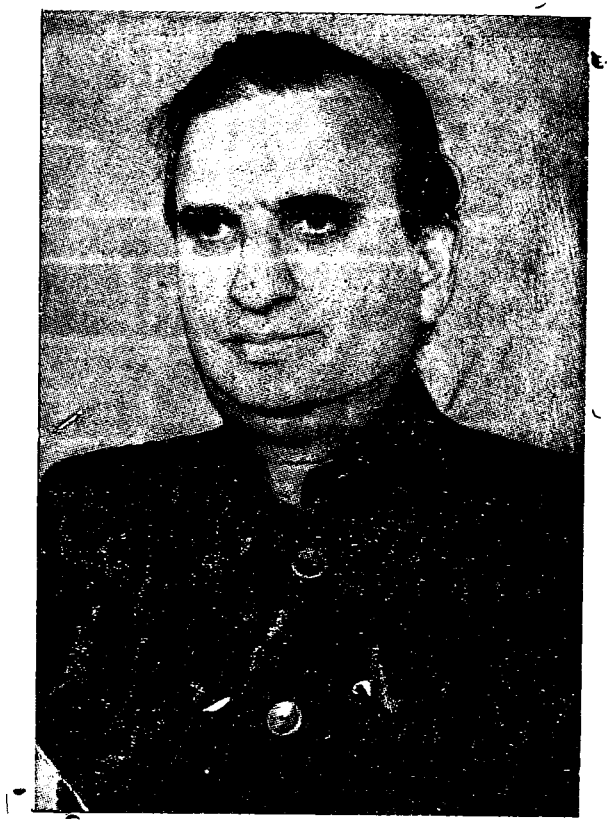

Param Sant Manav Dayal

Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

मासिक —

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र ।

सम्पादक :
श्री प्रेम प्रकाश शर्मा

वर्ष 24 | मंगलवार 10 सितम्बर 1996 | संख्या 5

राधास्वामी योग

हजूर दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज

(गतांक से आगे)

इस भण्डार की ओर तवज्जह केवल ख्याल की सहायता से दिलाई जाती है। यही विचार कराना सतगुरु का उपदेश कहलाता है। राधास्वामी मत का सत्संग केवल ख्याल दिलाने से सम्बन्ध रखता है। इस मत में न कठोरता है न सख्ती, न जोर है न जुल्म। जिसका जी चाहे सत्संग में आकर गुरु से सच्चे ख्याल ले और उनके अभ्यास में लग जाय। ख्याल का प्रतिदिन का अभ्यास उसके विश्वास को दिन प्रतिदिन दृढ़ करता चलेगा और जब वह अपनी आंखों से देख लेगा, फिर सम्भव नहीं है कि कोई लोक या परलोक की शक्ति उसे बहका सके अथवा पथभ्रष्ट कर सके। पथ-भ्रष्टता तो

अनसमझी, अनदेखी, अनसुनी और अनजाने का परिणाम है। यहां मनुष्य के अन्दर उसकी हालत के दिखाने का प्रबन्ध है। न कहीं पढ़ाना है न लिखाना है; न भरमाना है न भटकाना है। ख्याल सहानुभूति व प्रेम के साथ दिया जाता है। काम करो, काम में लगो और उसका परिणाम स्वयम् देखोगे। अधिक कहने सुनने की आवश्यकता क्या है? विचार ही मनुष्य को दुर्बल बनाता है और विचार ही शक्तिशाली बनाता है। विचार ही से उसमें ईश्वर पूजा आती है। विचार ही से निर्बलता आती है और नास्तिक हो जाता है। विचार ही से वह दुनियां का पुजारी बनता है। इस कारण से राधास्वामी मत में व्यर्थ और अनुपयोगी कर्म धर्म से निस्सम्बन्ध रहकर अपने सेवक, उपासक, साधक और अनुयायियों को केवल ख्याल दिला दिलाकर निजस्वरूप, सार तत्व और एकत्व-वाद की ओर तवज्जह कराता है।

सार वचन की भूमिका के कथन की ओर ध्यान दो—"मालूम होवे कि आदि शब्द कुल का कर्त्ता और स्वामी है। और यदि सुरत यानी उसके अव्वल जहूर का नाम राधा है। इन्हीं का नाम सुरत और शब्द है। और जब इनकी धार नीचे आई तब इसी आदि शब्द से और शब्द और आदि सुरत से और सुरत और शब्द से सुरत और सुरत से शब्द बराबर प्रगट होते आये और अपने-अपने मुक़ाम पर कायम हुए"।

शब्द चेतन्य का प्राकट्य हैं। इसी पर सृष्टि की उत्पत्ति निर्भर है। यही कर्त्ता धर्त्ता सब कुछ है। शब्द की महिमा जैसा कि हम पहिले कह आये हैं प्रत्येक धर्म में है। वेदों का प्रणव (ओ३म्), मुसलमान सूफियों का कुन शब्द और ईसाईयों का कलाम (शब्द) उसी की साक्षी देते हैं आदि-आदि। राधा स्वामी मत में इस आदि शब्द को स्वामी कहा गया है। धार के रूप में शब्द का प्राकट्य होता है। हम बोलते हैं। तुम सुनते हो। हमारी जिभ्या से आवाज़ निकलती है और वह धार के रूप में जाती हुई तुम्हारे अन्दर समा जाती है। यह तुम जानते हो। आदि शब्द से जो धार निकली उसी की उल्टी व गोल धार को राधा कहते हैं। जिस तरह स्वामी आदि शब्द था उसी तरह यह राधा आदि सुरत कहलाई। इनके मेल से यह जगत रचा गया और शब्द से सुरत और सुरत से शब्द का क्रम चल निकला। हम सुरत और शब्द से अपने-अपने मण्डल बनाकर उसमें स्थित होते चले गए और उनके बीच में भिन्नता की सूरतें कायम होती गई और भी इसी प्रकार होता गया।

रचना जब होगी धार के रूप में होगी और धार जब निकलेगी घेरे के रूप में चक्कर खा-खाकर उसी घेरे में ठहरेगी। गति सदा गोलाकार में प्रकट होती है। यह सिद्धान्त है। देह को देखो। राधास्वामी मत की

असली पुस्तक केवल मनुष्य शरीर है और सत्संग में उसी के अध्ययन की रुचि पैदा की जाती है। वह किसी अन्य का शरीर नहीं बल्कि तुम्हारा अपना शरीर है। इसी शरीर के तमाम अगों में धारों का ही व्यवहार है। मस्तिष्क से धार आई। वह स्थान-स्थान पर ठहरती और चक्कर खाती हुई भिन्न-भिन्न इन्द्रियों, अंगों और नस नाडियों में ठहरती हुई आई व उसने भिन्न-भिन्न रूपता का दृश्य प्रस्तुत किया। हाथ में क्या है? नस नाड़ियों के सिलसिले में धार ही का तो प्रबन्ध है। जब तक धार आती जाती है, तब तक वह पकढ़ता जकड़ता है, मारता है, सहारता है, तोड़ता है जोड़ता है। थोड़ा सा पहुंचे पर मजबूत बन्द लगा दो, फिर देखो होता क्या हैं? काम करना तो अलग वह अपनी बन्धी हई मुट्ठी तक को न खोल सकेगा और न खुली हुई मुट्ठी को बन्द कर सकेगा। यही दशा कुल इन्द्रियों की समझ लो। प्रत्येक इन्द्री में शब्द और सुरत की भिन्न-भिन्न शक्तियां मौजूद हैं और उनके भिन्न-भिन्न नाम हैं। असली धार जो मस्तिष्क से आती है उसे देखो। कैसी-कैसी सूरतें बनाती है और फिर भी ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आती जाती रहती है। इसी धार का आना जाना ही आवागवन है। यह तो तुमको थोडा बहुत ज्ञात हो गया कि तुम स्वयम् धारों से

बने हो। तुम्हारी इन्द्रियाँ धारों की गोल-गोल गिरहें या ग्रन्थियां हैं।

ठीक इसी प्रकार जब आदि धार उतरी तो वह गिरहें बनाती हुई आई। इन समस्त गिरहों के अन्दर सुरत और शब्द और शब्द और सुरत दोनों ही हैं। इनसे रहित एक भी नहीं है। चाहो इनकी परीक्षा कर लो। इन्हीं सुरत और शब्द के सिलसिले में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सब ही लिपटे हुए पड़े हैं और उनके अन्तरगत हैं।

एक ग्रन्थि सूर्य्य है। दूसरी चन्द्रमा है। तीसरी पृथ्वी है। चौथे देवता—किन्नर, गन्धर्व, राक्षस आदि हैं। पांचवीं मनुष्य है। छठवीं पशु, पक्षी थलचर, जलचर आदि सब हैं आदि-आदि। पञ्च भूत, आकाश आदि इसी चैतन्य धार की ऐसी ग्रन्थियां हैं जिनको तुम जड़ समझते हो। उसका भी प्राकट्य उसी से है। एक अपार समुद्र है जिसके क्षोभ के प्रभाव से अगणित बुलबुले बनकर एक विचित्र कारीगरी का तमाशा दिखा रहे हैं और देखने वालों को यह जगत राधास्वामी या आदि शब्द और आदि धार का दृश्य दिखाई दिया करता है।

यह हम कह क्या रहे हैं। कौन हमारी बातों को समझता है। और कौन इसे समझकर मानता है!

कोई कल्पना की परिभाषा को समझे बिना जगत को कल्पित कह रहा है। कोई 'सत्' शब्द को जाने बिना इस रचना को अन हुई मान रहा हैं। बातें तो सबने सीख ली हैं मगर इसकी सचाई को कोई बिरला ही समझता है। क्या बात बनाने वाला, स्वयम् कल्पना वाला और स्वयम् भी शारीरिक दृष्टि से अनहुआ नहीं है? लेकिन क्या वह उसी की बातचीत नहीं कर रहा है और क्या बातचीत और कल्पना मिथ्या या अनहुई नहीं है? राधास्वामी मत न शब्दों के गोरखधन्धे में फंसाता है और न बातों के जाल बनाता है। जो हैं उसे वैसा मानकर चलो और अपने अन्दर देखो तब यह भेद खुलेगा। बातों के नाखुन से यह गुत्थी कभी नहीं सुलझाई जा सकती।

इस शब्द की महिमा के विषय में भूमिका इस प्रकार लिखता है—

"शब्द की महिमा हर एक मत में है मगर शब्द का भेद किसी मत के ग्रन्थ या पोथियों में नहीं लिखा है। इसी सबब से लोग इससे नावाकिफ रह गये। अब हजूर राधास्वामी साहब ने तफ़सील शब्दों की और उनका भेद और बुजुर्गों का हाल खोल कर साफ़-साफ़ इस वाणी में लिखा है। (वाणी से अभिप्राय सार वचन पोथी है)"।

ऊपर हम स्वयम् ही शब्द के महत्व के विषय में कुछ न कुछ कह चुके हैं। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी अन्य धर्मों की पुस्तकों का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इसमें कोई हानि नहीं है।

जो लोग शब्द के प्रमाण या साक्षी को ही मुख्य या सर्वोपरि मानते हैं वे यों ही मानने वाले नहीं हैं। विवश उनके भावों की पुष्टि करनी पड़ती है। सुनिये—

कठ उपनिषद
2 व. 16

(1) "यह शब्द ब्रह्म है। इस शब्द का अभिप्राय सबसे ऊच्चा है। जो इस शब्द को जानता है अपने मन की कामनाओं को पूरी करता है"

बृहदारण्यक चतुर्थ ब्राह्मण
चौथा अध्याय 21

(2) "इसको जानकर ज्ञानी ब्रह्म का विचार करते हैं। वह बहुत से शब्दों का ध्यान न करे क्योंकि शब्द परेशान करते हैं"।

छान्दोग्य उपनिषद्
प्रथम अध्याय 4
खण्ड 3

(3) "……उसने शब्द अर्थात् स्वर का सहारा लिया है"।

छान्दोग्य प्रथम अध्याय (4 4 खण्ड 3

'वह जो इसको जानता है, इस (ओ३म्) अक्षर की स्तुति करता है और अमृत होकर अक्षर को प्राप्त होकर देवता हो जाता है"।

नाद बिन्दु उपनिषद् ऋग्वेदी

(1) "योगी सिद्ध आसन पर बैठकर वैष्णवी मुद्रा का अभ्यास करता हुआ दाहिने कान से अन्तरीय शब्द सुने" !

(2) इस प्रकार शब्द का अभ्यास करने से वह वाह्य शब्दों से वहरा बन जायगा। इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर वह केवल 15 दिन में तुरिया अवस्था को प्राप्त करेगा।

(3) पहिले उसको समुद्र, बादल, बाढ़ और भेरी के शब्द सुनाई देंगे। बीच में घण्टा और शंख सुनेगा।

(4) जब तक शब्द है तब तक आकाशी ध्यान है अशब्द के पश्चात् ब्रह्म है।

(5) जब तक शब्द है तब तक मन है। शब्द के बन्द होते ही उन्मुनि अवस्था आवेगी।

(6) वह अक्षर में समायेगा। यह अशब्द की दशा अन्तिम अवस्था है ।

(7) इसके पश्चात् वह शंख या ढोल का शब्द नहीं सुनता ।

(8) नाद और बिन्दु बहुत हैं। वह ब्रह्म प्रणव में लय हो जाता है ।

(9) जैसे मक्खी शहद को चूसती है वैसे ही वह शब्द में लीन हो जाता है और इसका चित निश्चल बन जाता हैं ।

योगाचार्य का मत मैडम ब्ल्युस्की के वाइस आफ़ साइलेंस के हवाले पर पृष्ठ 22-24

(1) "वह जो नाद (शब्द) को सुनता है और अशब्द नाद को सुनता हैं धारणा की कैफ़ियत को समझता है" ।

(2) "पहिली आवाज़ बुलबुल के चहेचहे की तरह मीठी है।

दूसरी चांदी की झनकार है।
तीसरी समुद्र की लहरों की है।
चौथी बीन की आवाज़ है।
पांचवीं तुरही की है ।
छटी बादल की गरज है।

जब सातवीं आवाज़ आती है, सब आवाजें मर जाती हैं। वह एक में लय हो जाता है और उसी में रहता है"।

ईसाइयों की युहन्ना की अञ्जील, प्रथम अध्याय प्रथम आयत	"आदि में शब्द था। शब्द मालिक के साथ था। शब्द ही ने सब कुछ पैदा किया"।

सूफ़ी मौलाना रूम के फ़ारसी शेरों में भी आवाज़ (शब्द) के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन है। उन्होंने यहां तक लिखा है कि—"पैगम्बर साहब ने कहा कि खुदा की आवाज़ मेरे कान में मानिन्द 'सदा' के पहुंचती है"।

शाह नियाज़ का भी कहना है कि तमाम दुनियां आवाज़ से भरी है लेकिन तू अपने कान के दरवाजों को खोल। खोलने का अभिप्राय यह है कि तू सुनने के रास्ते को बन्द कर डाल।

ख्वाजा हाफ़िज के शेरों में भी यह उल्लेख है कि आकाश से आवाज़ लगाई जा रही है और इतना भी पता है कि घण्टे की आवाज सुनाई देती है।

अन्य धर्मों के इतने ही प्रमाण विश्वास दिलाने को पर्याप्त। सन्त मत के सैकड़ों विभिन्न पन्थों के ग्रन्थ

शब्द की महिमा से भरे हुए हैं। चूंकि यह एक ही सिलसिले की शाखें हैं इनको वर्णन करना यहां व्यर्थ है। कबीर जोग और नानक जोग के पढ़ने वाले स्वयम् भी जानते हैं।

राधास्वामी सार वचन में शब्दों का जो वर्णन आया है वह उस पोथी में विवरण सहित मिलेगा, अथवा इस राधास्वामी योग में समय समय पर और स्थान-स्थान पर वर्णन किया जायगा। भूमिका में इस प्रकार लिखा है—

"खुलासा भेद" शब्द का नीचे लिखा जाता है—

"कुल की आदि राधास्वामी यानी कुल मालिक—यहां शब्द निहायत गुप्त है और उसकी उपमा यानी नमूना इस रचना में कहीं नहीं है। इसी शब्द से सत्पुरुष पैदा हुए।

शब्द पहिला— सत्पुरुष का शब्द जिसको सत नाम और सत्य शब्द भी कहते हैं और जिसकी कुदरत से सोहंग पुरुष, परब्रह्म, ब्रह्म और माया प्रगट हुए।

शब्द दूसरा— सोहंग पुरुष का शब्द।

शब्द तीसरा— परब्रह्म का शब्द जिसकी मदद से तीन लोक की रचना ठहरी हुई है।

चौथा शब्द— ब्रह्म शब्द जो 'प्रणव' है जिससे सूक्ष्म ब्रह्माण्डीय वेद और ईश्वरीय माया प्रगट हुई।

पांचवां शब्द— माया और ब्रह्म का शब्द जिससे त्रिलोकी की रचना का मसाला प्रगट हुआ और आकाशी वेद ज़ाहिर हुए।

माया शब्द के नीचे विराट पुरुष का शब्द और जीव और मन का शब्द प्रगट हुआ"।

इस विवरण की सूची को यदि व्याख्या की जायगी तो कठिनाई से किसी की समझ में आवेगी, क्योंकि राधास्वामी मत दुनियां का सबसे अधिक पूर्ण मार्ग है। जब तक कि आदमी अन्य मत-मन्तारों के हालात से परिचित न हो, इसके कथन को नहीं जान सकता। फिर भी हमको तो समझाना ही है। किसी न किसी प्रकार हम समझाने का प्रयत्न करेंगे। प्राणायाम का गायत्री मन्त्र जो हिन्दुओं में प्रचलित है उसमें सात भूमिकाओं या स्थानों का वर्णन है जो मनुष्य के अपने शरीर में मौजूद हैं। यद्यपि यह नीचे के स्थान हैं मगर इस सूची के साथ तुलना कर दिखाने में हानि नहीं है—

1. ओ३म् भु।
2. ओ३म् भुवः।
3. ओ३म् स्वः।
4. ओ३म् महः।
5. ओ३म् जनः।
6. ओ३म् तपः।
7. ओ३म् सत्यम्।

इनमें 'भू' जीव का स्थान है और उसी प्रकार के शब्द से सम्बन्ध रखता है। 'भुवः' पिण्डी मन का स्थान है। 'स्वः' ईश्वर या विराट का स्थान है। 'महः' ब्रह्म

पद, 'जनः' परब्रह्म पद, 'तपः' सोहंग पुरुष और 'सत्यम्' सत् पद या सत् नाम से तुलना (मुशाबा) है । यहां आकर मन्त्र के सातों स्थान समाप्त हो जाते हैं। आगे शुद्ध रूहानी (आध्यात्मिक) स्थान अलख, अगम और राधास्वामी आते हैं जो राधास्वामी धाम से सम्बन्धित हैं। इस पारस्परिक तुलना से इतना तो समझ में आयेगा कि राधास्वामी मत योंहि तालीम नहीं देता । उसका नमूना वैदिक मार्ग में मौजूद है। हां, लोग अनभिज्ञ हैं। इन स्थानों के भिन्न-भिन्न शब्द पुस्तक के सिलसिले में समझाते हुए दिये जायेंगे।

सत सनातन धर्म

अथवा

सत मानव धर्म

परम संत परम दयाल

पंडित फकीर चन्द जी महाराज

अष्टम सत्संग

(उज्जैन कुम्भ 12-5-68)

नाम संस्कार (लगातार)

मैं अपने आप से पूछता हूं कि मैं यह काम क्यों करता हूं ? मैं कहता हूं मैं किसी पर अहसान नहीं करता, अपना कर्म भोगता हूं । जिस प्रकार जुलाहा अपने लिए कपड़ा बुनता है और पांच या छः आना गज़ के हिसाब से वेचता है । उसको भी लाभ होता है । दुकानदार ले जाता है वह भी कमाता है । दर्जी भी कमाता है और धोबी कपड़ें को धोता है वह भी कमाता है । कपड़ा पहिनने वाले को भी आराम मिलता है । जब वह कपड़ा

गल जाता है अथवा उसके चिथड़े हो जाते हैं, मील वाला ले जाकर उसके कागज बनाता है।

इसी प्रकार मैं तो था सनातनी, राम को मानता था। मुझे क्या पता था कि मेरे भाग्य में राधास्वामी मत आयेगा। चूंकि राधास्वामी मत की वाणी मेरी समझ में नहीं आती थी। अतः मैंने प्रण किया था कि जो इस मत में अनुभव होगा और जो मेरी समझ में आयेगा वह बता जाऊंगा। इसलिए कर्म तो मैं अपना भोगता हूं। सम्भव है मेरे काम से किसी को लाभ पहुंच जाय।

पैदा होने के बाद बच्चे को जब समझ आने लगती है वह तीन बातें सोचता है। जिस वस्तु को वह देखता है, उसके पीछे दौड़ता है, उसको जानने की कोशिश करता हैं। जब बच्चा बाबा की गोद में होता है वह सवाल करता है यह क्या है? जो कुछ वह देखता है वह कहता है यह क्या है? मैं जब दुनियां में आया, दुनियां को देखा तो ख्याल आया, किसने यह बनाई, कहां से आई। इस खब्त में चूंकि बुद्धि मिली थी, समझ आ गई कि भगवान होता है, राम होता है। उसको खोजा। उस खोज के सिलसिले में भिन्न-भिन्न धर्म सम्प्रदाय, विचारधारा तथा महापुरुष जो कुछ लिखकर दे गए पढ़े या मैंने सुने तो जो कुछ किसी ने कहा वैसा-

वैसा-वैसा मैंने करना शुरू किया। चूंकि उनमें भिन्नता थी इसलिये मैंने खोज की और मेरी अपनी इच्छा थी कि जो कुछ मिलेगा मैं बता जाऊंगा।

मैं मालिक को मिलने को निकला था। पहिले मैंने मालिक को अपने मन से विश्वास करके माना कि वह हैं। फिर किसी ने ख्याल दिया कि वह साकार रूप है। फिर उसको राम या कृष्ण के रूप में माना उसको पूजा। मेरे सामने राम धनुषधारी घण्टों में ऐसे खड़ें रहते थे जैसे तुम मेरे सामने बैठे हुए हो या तुमको देखता हूं या बातें करता हूं। उनसे बातें किया करता था। रामायण में लिखा है—

नाना भान्ति राम अवतारा।
रामायण शत कोटि अपारा॥

इसलिए चित्त यह चाहता था कि यदि राम मानव रूप में मिल जांय तो उनकी सेवा कर लूं, उनसे प्रेम कर लूं। मेरा ही दृश्य था जो दातादयाल के चरणों में ले गया। जब उनको मैं राम मान कर पूजा करता था उन्होंने मेरे ख्याल को बदला। उन्होंने मुझे गुरु मत में ढकेला। फिर दातादयाल को गुरु मान कर पूजा। बड़ी सिद्धि शक्तियाँ मेरे पास आई। जब मैं बसरा बगदाद में गया तो जब युद्ध क्षेत्र है आपत्ति में था तो मेरे राम

दातादयाल बनकर प्रगटे। उन्होंने जो मुझे आदेश दिया। मैं उस पर क्रियान्वित हुआ। मैं शत्रु से बच गया। जब बसरा बगदाद लौटकर गया तो सत्संगी लोग मिल गये। उन्होंने स्टेज पर बिठाकर मेरी आरती की। मैंने पूछा कि क्यों? गुरु महाराज तो लाहौर में हैं, तुम यह क्यों करते हो? वह कहने लगे— बाबा! (मेरे को मास्टर जी कहा करते थे तूने अमुक स्थान पर हमारी सहायता की, अमुक स्थान पर दर्शन दिये। जब यह बात सुनी तो मैं था नहीं, मेरी आंख खुल गई कि इनके अन्दर कौन गया? मुझे विश्वास हुआ कि यह मन के जितने रूप मेरे सामने आते थे यह मेरे अपने ही मन की कल्पना थी। जैसा मेरा अपना विश्वास था, मेरे काम होते रहते थे। इस अनुभव के आधार पर चूंकि मैंने प्रण किया था कि संसार को कह जाऊंगा, कहता हूं कि ऐ मानव! तू जिस रूप में भी उसको मानता है, माने जा। दुनिया में तेरी रक्षा होती रहेगी, जैसे मेरी रक्षा होती रही अथवा उन सत्संगियों की रक्षा हुई।

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखो तिन तैसी॥

इसलिए मैं किसी धर्मावलम्बी का विरोध नहीं करता। हर एक सम्प्रदाय अपनी जगह पर ठीक है मगर

जो असली खुदा, असली भगवान, असली मालिक है जिससे यह रचना हुई है, जो इस सृष्टि का आधार है, वह और है ! वह और है !! क्यों ? क्योंकि यदि मैं ही सब कुछ हूं तो मैं जो चाहे कर सकता हूं मगर नहीं कर सकता । फिर मुझको उस मालिक की खोज हुई । जब मैं अपने अन्तर गया मुझे ज्ञात हो गया कि यह मेरा ही रूप है । फिर इसके पश्चात प्रकाश आया, शब्द आया । प्रकाश मैं रहते-रहते आनन्द लिया मगर मालिक की मुझे खोज थी कि वह क्या है ? यदि यह कहूं कि मालिक शब्द ही है तो शब्द को सुनता कौन है ? बात सोचने वाली है। मान लो तुम्हारे अन्तर में बाबा फकीर प्रगट होता है। तुम और हो और बाबा फकीर और है, तुम्हारे अन्दर प्रकाश (नूर या ज्योति) प्रगट होता है। तुम प्रकाश को देखते हो। तुम और हो तथा प्रकाश और है। तुम अपने अन्दर शब्द को सुनाते हो। तुम और हो तथा शब्द और है। यह प्रकाश और शब्द जो कुछ भी है इसका साक्षी कौन है ? साक्षी वह जो तुम हो। तुम्हारी सुरत शब्द को सुनती है, प्रकाश को देखती है, मन के रूप को देखती है, बाबा फकीर को अन्दर में देखती है। फिर असली मालिक तुम्हारे अन्तर में कौन हुआ ? वह तुम हो, क्योंकि तुम साक्षी हो। तुम्हारे अन्तर जो कुछ उत्पन्न होता है— रूप, रंग, शब्द या प्रकाश यह तम्हारे शरीर के कारण उत्पन्न होते हैं।

तुम उससे अलग हो अपने शरीर में। इसी प्रकार यह जो सारा ब्रह्माण्ड है, इसका आधार मालिक वह है जो सुरत का भण्डार है। उसको बोलते हैं अकाल पुरुष, परम तत्व।

अब मैं अपने शरीर में कोशिश करता रहता हूं उस मालिक से मिलने की। चूंकि ज्ञान हो गया है कि शब्द मेरे अन्तर है, मैं जब चाहूं शब्द को सुनूं, प्रकाश को जब मैं चाहूं देखूं, जब न चाहूं न देखूं। गुरु के स्वरूप को चाहूं बनाऊं, जब चाहूं न बनाऊं। जब मेरा जी चाहे नेक बनूं, मेरा जी चाहे न बनूं। मेरा जी चाहे पापी बन जाऊं, मेरा जी चाहे मैं नेक बन जाऊं। जो वस्तु मेरे अन्तर में देखने वाली है मैं उसको ढूंढता हुआ मैं ही गुम हो जाता हूं। जहां मैं अपना आपा गंवा देता हूं तो शेष क्या रह जाता हैं ? कबीर साहब की जुबानी सुनो। मैंने तुमको अपना अनुभव बताया है कि मैं किस ढंग से चला हूं।

जो रूप बनते हैं वह तो मुझ को निश्चय हो गया कि मेरी प्रकृति है। तुम लोग मेरे गुरु हो कि तुमने मुझे बता दिया। कल ही शाम को एक स्त्री बैठी हुई थी। यहाँ भी कहीं सत्संग में होगी। वह कहती है बाबा जी! मुझे साहब जी महाराज से उपदेश लिए

25 वर्ष हो गए। सब कुछ भूल गई थी। दुःखी रहती थी। मैंने सोचा था कि जो कोई होगा गुरु, मुझे बुलायेगा। रात को साढ़े बारह बजे आप आ गये। मैं उसके अन्दर प्रगट हुआ। उसको आदेश दिया कि तू सत्संग में आजा। वह कहती है मैं बीमार थी मगर मैं सत्संग में आ गई। अब मैं सच कहता हूं कि मैं उस स्त्री को जानता भी नहीं कि वह कौन है। तब ही तो मैं कहता हूं कि मैं इसीलिए संसार में सन्त सत्गुरु वक्त प्रगट हुआ हूं कि तुम लोगों को ऐसी बातें कह कह कर तुमको मौजूदा मतों ने मूर्ख बनाया हुआ है और तुम्हारे धन दौलत को लूटा हुआ है। मैं गलत नहीं कह रहा हूं। मैं वक्त का गुरु हूं सच्चा ज्ञान देता हूं ताकि तुमको चेत हो जाय।

तो वह जो साक्षी है अथवा मालिक है क्या निकला? मालिक तो वह अवस्था है जहां मैं खोजता हुआ चला जाता हूं और मैं ही नहीं रहता। फिर मालिक तो अरूप है, अरंग है, अनामी है। उसका कोई नाम नहीं। न वह मन है, न वह बुद्धि है, न चित्त है, न अहंकार। न वह देह है। यह मेरी रिसर्च (खोज) ने सिद्ध किया है। मैं आँख खोल कर चला हूं इस मार्ग पर। यह मेरे जीवन का अनुभव है। यही अनुभव कबीर का है। इसीलिए मैं कबीर हूं। मैं सच कह रहा हूं कि मैं कबीर हूं। तुम कहोगे कि तुम यह क्या कहते हो? बकते हो। मैं बकता

नहीं किन्तु सच कहता हूं। मैं कहता हूं मैं कुछ नहीं क ता, किसी के अन्दर नहीं जाता। जो कुछ तुमको मिलता है तुम्हारे अपने कर्म का फल है। यही कबीर का कथन है—

न कुछ किया न कर सका, न करने योग शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, भयो कबीर कबीर॥

मैं यह कहता हूं कि मैं कुछ नहीं करता, किसी के अन्दर नहीं जाता, न फूंक मारता हूं, न मेरे पास कुछ है। तुमको जो कुछ मिला है, मिलेगा या मिला, यह तुम्हारे अपने ही कर्म का, अपने ही मन का, अपने ही श्रद्धा विश्वास का तथा अपने ही भाव का फल मिला। मैं देने वाला कौन हूं? मेरे जिम्मे ड्यूटी है ज्ञान देना सच्चो बात तुमको बता देना, तुम्हारे संशय भ्रमों को मिटा देना। वह मैं कहता हूं। जो दुनियां में यह मानते हैं कि बाबा फकीर रात को स्वप्न में दर्शन दे गए यह सब गलत है। पाखण्ड का जाल है। यदि मैं अपने आपको कबीर कहता हूं तो क्या गलत कहता हूं? कबीर भी तो यही कह गए।

न कुछ किया न कर सका, न करने योग शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, भयो कबीर कबीर॥

हरि मन है । ब्रह्माण्डीय मन (Universal mind) है । तुम्हारा मन हरि हैं । जैसी तुम्हारी आशा है जैसी तुम्हारी वासना है, जैसे तुम्हारे भाव हैं, जैसा तुम्हारा आचरण है, जैसा तुम्हारा कर्म है, वैसा फल तुम को मिलेगा । ध्यान से सुनना। कबीर का शब्द हैं—

सखिया वा घर सबसे न्यारा
जहां पूरन पुरुष हमारा ॥ टेक ॥
जहं नहिं सुख दुःख सांच झूंठ नहिं,
पाप न पुन्न पसारा।
नहिं दिन रैन चन्द नहिं सूरज,
बिना जोति उजियारा ॥ 1 ॥
नहिं तहं ज्ञान ध्यान नहि चुप तप,
वेद कितेब न बानी।
करनी धरनी रहनी गहनी,
ये सब उहां हिरानी ॥ 2 ॥
बर नहिं अधर न बाहर भीतर,
पिण्ड ब्रह्माण्ड कछु नाहीं।
पाञ्च तत्व गुन तीन नहीं
तह साखी शब्द न ताहीं ॥ 3 ॥
मूल न फूल बेलि नहीं बीजा,
बिना वृच्छ फल सोहे।
ओअं सोहं अर्ध उर्ध नहिं,
स्वासा लेख न कोहे ॥ 4 ॥

नहिं निर्गुन नहिं सगुन भाई,
नहिं सूक्षम अस्थूल।
नहिं अच्छर नहिं अवगत भाई,
ये सब जग के भूल ॥ 5 ॥

जहां पुरुष तहवां कछु नाहीं,
कहै कबीर हम जाना।
हमारी सैन लखे जो कोई,
पावै पद निरबाना ॥ 6 ॥

अब तो मेरे जीवन की रिसर्च (खोज) थी वह कबीर ने सिद्ध कर दी। यदि मुझे अपने मान आदर की, धन-दौलत की आवश्यकता होती तो जिस तरह दूसरे लोगों ने पर्दा रक्खा मैं भी बात को पर्दे में रखता। अपनी गद्दियां बना जाता, मोटरें खरीद के चला जाता। अपनी कोठियाँ बना जाता। अब जो कुछ मेरा अनुभव है वही कबीर ने सिद्ध कर दिया। अब राधास्वामी मत की वाणी सुनो—

जेठ महिना जेठा भारी।
हरिदे जीवन तपन करारी ॥

तपन क्या है? जीव मिलना चाहता है। जीवन कुछ चाहता है। सुरत कहीं जाना चाहती है। सुरत को किसी वस्तु को मिलने की चाह है। इस चाह का नाम

है तपन। लोग उस मालिक की खोज में या दुनियां के सुख की खोज दौड़ते है। वह तपन है उनकी।

सन्त दयाल दीन हितकारी।
भेद कहें अब निज कर भारी॥

राम के मिलने को जीव तपन करता है। कोई साधु बनता है, कोई तपस्या करता है, कोई धूनो रमाता है, कोई योग करता है, कोई जप, तप तीर्थ ब्रत करता है। सन्त दयाल है। ऐसे जीवों को जो उस शान्ति को, मालिक को मिलने के लिए अनेक प्रकार के साधन करते हैं उनको भेद बताते हैं कि असलियत क्या है? मैं रहस्य ही बताता हूं। अब उस माई के अन्दर रात्रि के ढाई बजे बाबा फकीर प्रगट हुआ। वह भ्रम में है, भूल में है, अज्ञान में है। बुखार की दशा मे घर से रुपया खर्च करके यहां आई है। शायद पांच रुपया उसी में हमारे भी हों कि इतनी भेण्ट हो बाबा फकीर की, इसलिए कि बाबा फकीर रात्रि को ढाई बजे उसके अन्तर उसे बुलाने के लिए गया।

(क्रमशः)

सत्संग

परमसन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस

हज़ूर मानव दयाल जी

डा॰ ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

हैदराबाद (आं. प्र.)

दिनांक : 7-2-1992

शब्द

तू दया का रूप प्यारे, तू दया भण्डार है ।
कर दया दृष्टि दयामय, तुझ ही से अधिकार है ॥

सन्त सतगुरु तुझको कहते हैं नहीं हूं जानता ।
मेरे अनुभव में दया करुणा का तू भण्डार है ॥

मेरे दाता शीश पर मेरे दया का हाथ रख ।
तू है दानी दीन बन्धु, जगत् का दातार है ॥

मेरे अन्तर में समाया, मेरे साँसों साँस में ।
तू है व्यापक यह समझ दे, सच्चा जो अधिकार है ॥

आस रखकर गुरु दया की, नित करो अभ्यास तुम ।
रात दिन पल क्षण तुम्हारा वह सदा रखवार है ॥
छोड़ो ममता छल कपट चतुराई, गुरु से स्नेह जोड़ ।
भक्ति उसकी कर, वह सच्चा प्रेम का भण्डार है ॥
राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी नित सुमरि ।
राधास्वामी सर्व रक्षक, सर्वदा हितकार है ॥

—:00:—

गुरुर्देवं जगद्व्याप्तं, ब्रह्मा विष्णु शिवात्मकम् ।
गुरु परतरम् नहि निञ्चित, तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥
मानव धर्मस्य धातारम्, दाता दयालस्य प्रियतमम् ।
सन्त धर्मस्य गोप्तारम्, फकीरम् वन्दे जगद्गुरुम् ॥

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप, सद्गुरु रूप, उपस्थित प्यारे सत्संगी भाइयो और बहनो ! हैदराबाद के इस सत्संग के अवसर पर यह तीसरा सत्संग है, और इसके बाद सायंकाल का सिल्वर जुबली का सम्मेलन अंजैया हाल में होगा ।

इस सत्संग के लिए दातादयाल जी महाराज का जो शब्द पढ़ा गया है, वह बहुत ही मार्मिक है । गुरु मत है और गुरु परम्परा आदि काल से

रही है। उपनिषद् काल के उन ऋषि-गुरुओं के समय से वशिष्ट, वेदव्यास, शुकदेव जी आदि की परम्परा गुरुमत परम्परा रही है। राधास्वामी मत कोई नया नहीं है। यह उसी सनातन धर्म के विकास की अन्तिम सीढ़ी है जो हर युग में मौजूद था। तभी तो समय के अनुसार सद्गुरु अवतार लेते रहे हैं। और कृष्ण ने तो कह ही दिया—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मनं सृजाम्यहम्" ॥

उन्होंने अर्जुन को कहा— "हे अर्जुन, यह सुरत-शब्द योग पराभक्ति का ही रहस्य है। मैंने सबसे पहले यह योग विवस्वान को बताया था"। (विवस्वान का अर्थ सूर्य है। वैसे विवस्वान एक बहुत महान् राजा भी हुए हैं)। इन विवस्वान ने आगे चलकर यह रहस्य मनु को बताया, और मनु ने इक्ष्वाकु को बताया। इक्ष्वाकु के द्वारा राजर्षियों में यह योग प्रचलित हुआ। इस योग के द्वारा उन्होंने परमतत्व को प्राप्त किया। वही योग मैं तुम्हें आज बता रहा हूं"।

अर्जुन के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ। उसने कहा, "महाराज, विवस्वान तो बहुत पहले हुए थे, और आप तो अब हुए हो। मैं कैसे मान लूं कि आपने विवस्वान को यह योग बताया था"?

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सम्बोधित करके कहा—

"परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे"॥

वास्तव में सद्गुरु तो परम तत्व मालिके कुल ही है जो न पैदा होता है, न मरता है। वह तो जगत् का कर्त्ता है, प्रतिपालक है, और वह ही समस्त रचता को अपने में समाविष्ट कर लेता है। यह सब उसको ही लीला है, मौज का खेल है। कोई सवाल कर सकता है कि उस मालिक में यह सब रचना क्यों की? उसे क्या जरूरत थी यह तमाशा देखने की? हम जीवों को दुःख में तड़पने की क्या आवश्यकता थी उसे? ऋषियों और चिन्तकों ने इस प्रश्न का जवाब एक सभा में दिया है। किसी ने कहा कि यदि रचना उसकी लीला है, तो इस लीला का कोई मकसद होना चाहिए। लीला कहते हैं खेल को। खेल का कोई मकसद नहीं होता। बच्चा खेलता है। खेलने में उसे आनन्द मिलता है। उसका कोई लक्ष्य नहीं है। खेल तो स्वलक्ष्य है। वह अपना लक्ष्य आप है। इस सिद्धान्त पर भी विचार किया गया। और पाया गया कि बच्चे के अन्दर जरूरत से अधिक शक्ति होती है। शक्ति प्राचुर्य एक सिद्धान्त ही हैं। जब शक्ति अधिक हो जाती है तो वह इस शक्ति प्राचुर्य का उपयोग खेल में करता है। इस दृष्टि

से परम तत्व सर्वाधार अपने आप में पूर्ण है। उसे किसी प्रकार की जरूरत नहीं। एक दृष्टि से यह रचना उसकी वासना से होती है। हम जो कुछ भी रचना करते हैं, पहले उसकी वासना होती है। उस वासना की पूर्ति के लिए हम रचना करते हैं। वासना शब्द का प्रयोग मालिक के लिए करना ग़लत बात है। क्योंकि वासना में एक प्रकार की कमी का बोध होता है। वासना के बजाय हम उसे मालिक की मौज कहते हैं। जब परम तत्व के सागर में हिलोर आती है तो उसकी शक्ति प्राचुर्य उफन कर छलकने लगती है, और इसी क्रम में जगत् की सृष्टि हो जाती है। ऋषियों ने चिन्तन से यह रहस्य खोज निकाला। मालिक के अन्तर में एक हिलोर उठी— 'एकोऽहम् बहुस्याम्' और परिणाम स्वरूप यह रचना हो गई। और फिर रचना के आधिक्य से उसमें विचार उठा कि फिर एक हो जाऊं, तो सारी सृष्टि उलट कर फिर उसी में विलीन हो गई। यह उस परम सत्ता का स्वभाव लीला है। जैसे एक हीरे का स्वभाव है कि वह अपने अन्दर से किरणें बिखेरता है और फिर अपने अन्दर ही उन्हें समेट लेता है। जब परम तत्व से धारा निकलती है तो अनेक मण्डलों की रचना हो जाती है— ओं भूर्भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यं आदि कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड और जीव-जगत् उसमें आ जाते हैं। उसी परम आधार मालिक से हम सब निकल कर आए यहां पर यह

देखने के लिए कि मालिक ने कितना सुन्दर संसार रचाया है। जहां कुछ नहीं था, कोई देश-काल-दिशायें नहीं थीं। न भौतिक जगत् था, न मनोमय जगत् था, न प्राणमय कोष था, न विज्ञामय कोष, न आनन्दमय कोष। कु छ भी नहीं था। मालिक उन्मुनी अवस्था में अपने आप में गुप्त था— अपनी ज़ाते पाक में, निज स्वरूप में अविगत अवस्था में था, जिसके अन्दर कोई विचार, भाव आदि नहीं थे। वह अजर अमर अविनाशी विशुद्ध प्रेम का भण्डार है। दाता दयाल ने उस रूप को इस तरह कहा है—

'सन्त सद्गुरु तुझको कहते हैं. नहीं हूं जानता।
मेरे अनुभव में दया करूणा का तू भण्डार है'॥

अब आप मानो या न मानो, वह मालिके कुल, जिसे आप सद्गुरु मानते हो, वह आप सबके अन्दर भी मौजूद है। वह दया और करूणा भी उस ज़ाते मुतलक सर्वाधार में नहीं है। यह दया और करूणा तो उसमें उस वक्त होती है जब वह शरीर धारण करके सन्त सद्गुरु के चोले में अवतार लेता है। तभी वह दया-करूणा का भण्डार होता है।

'कर दया दृष्टि दयामय,
तुझको ही अधिकार है'।

जब हम उस प्रियतम की ज़ात में समाए हुए होते हैं

तब उस अवस्था में 'मैं और तू", "एक या दो" नहीं होते। वहां अलगाव या दो-पता या अनेकत्व नहीं होता। आप उसे अनन्त कहो, अनादि कहो, अनामी कहो, चेतना-भण्डार कहो, या कुछ भी कहो। मैं उसको प्रेम का भण्डार, प्रेमसागर मानता हूं। और उसने यह जगत् बनाया ही इसीलिए है कि उससे अलग होकर हम उससे फिर मिलकर एक होने के लिए तड़पें और हमें अनुभव हो कि प्रेम-तत्व क्या वस्तु है? हम इस संसार में दुःखी होकर फिर उस आधार की ओर लौटते हैं और उसमें मिलकर एक हो जाते हैं। प्रेम का वास्तविक मूल्य-महत्व हमें तब मालूम होता है जब हम उससे बिछुड़ कर अलग होते है। जब हम उस मालिक से बिछुड़ कर इस जगत् में आए तब हमें उसकी याद आई और तब हमें उसका मूल्य उसको महिमा का पता लगा। इस प्रकार यह जगत् प्रेममय हैं, प्रेम के लिए बनाया गया है, और प्रेम का अनुभव कराने के लिए वनाया गया है। यह संसार प्रेम का ट्रेनिंग ग्राउण्ड, प्रेम को पाठशाला है। यहां आकर ही हमें पता चलता है कि हमारा सच्चा प्रियतम कौन और कहां है? उस प्रियतम का प्रेम और प्रेम की तड़प हमारे अन्दर कुदरतन मौजूद है। प्रेम के भी अनेक रूप हैं। नफरत और ईर्ष्या भी प्रेम के ही रूप हैं। मैंने आपको कल बताया था कि यह जगत् परमाणुओं से वना है। विज्ञान हमें बताता है कि परमाणु के अन्दर एक केन्द्र होता है जिसके चारों ओर पाजिटिव-निगेटिव (आकर्षण-विकर्षण)

शक्तियां परिक्रमा करती रहती हैं। यह कारण है कि प्राणी में प्यार और नफरत दोनों रहते हैं। और इनको बनाए रखने वाली जो शक्ति है— एलेक्ट्रान-प्रोटान के बीच न्यूट्रान है।

'गुरुर्देवो जगत् व्याप्तम्,
ब्रह्मा विष्णु शिवात्मकम्'।

गुरु परम तत्व सारे जगत् में व्यापक और मौजूद है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के रूप में, सृष्टि–स्थिति—प्रलय के रूप में व्याप्त है। 'गुरु परतम् नहिं किञ्चित'। गुरु से परे और कुछ भी नहीं है। वह गुरु—सद्गुरु जिसने यह जगत् बनाया, प्रेममय है। इसीलिए मैं कहता हूं कि नफरत भी प्रेम है। आप कैसे मानोगे कि नफरत प्रेम है? जब आप किसी से नफरत करते हैं तो वास्तव में आप चाहते हैं कि उसके अन्दर कोई बुराई या गलती न रहे। नफरत के रूप में आप दरअसल उससे प्रेम कर रहे होते हैं। मालिक ने यह जगत् बनाया ही प्रेम के लिए, और मालिक के मिलने का एकमात्र रास्ता प्रेम का रास्ता है। प्रेम की पराकष्ठा ही मालिक या परमेश्वर है।

'सन्त सतगुरु तुझको कहते हैं, नहीं हूं जानता।
मेरे अनुभव में दया करुणा का तू भण्डार है'॥

वह सद्गुरु जो दया और करुणा का भण्डार है, परम

तत्वधार है, और सारे जगत् में व्यापा हुआ है, हमारे सबके अन्दर भी मौजूद है। जब उसने देखा कि उसके ही अंश उससे बिछुड़ कर संसार में आकर दुःखों में फंस गए है और छुटकारा पाने का रास्ता उन्हें नहीं पता चल रहा, तो वह परम तत्व स्वयं ही सद्गुरु के रूप में यहाँ आया। तुम उसे ढूंढ़ रहे हो, और वह तुम्हें ढूंढ़ रहा है। तभी तो कहा है—

'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्॥

जब-जब धर्म की हानि होती है, जब प्रेम आविभूत हो जाता है, और ईर्ष्या-द्वेष बढ़ जाता, तब-तब मैं अवतार लेकर अपने आपको प्रकट करता हूं।

एक राजा था उसका वज़ीर बड़ा ईश्वरपरायण था। वज़ीर राजा से कहा करता था कि परम तत्व सर्वाधार हमें जगाने के लिए हर समय स्वयं अवतार लेता है। राजा कहता कि यह कैसे हो सकता है? जब उसके 33 कोटि देवी-देवता हैं तो वह स्वयं अवतार ले, यह कैसे हो सकता है"? वज़ीर बोला, "महाराज, मैं आप के प्रश्न का उत्तर समय पर दूंगा"। कुछ दिनों बाद राजा वज़ीर के साथ नौका की सैर करने गया। वज़ीर ने राजा के छोटे कमार की शक्ल का एक पुतला बनवा

लिया था। उसे साथ ले लिया। जब नौका मझधार में पहुंची तो वज़ीर ने अचानक कुमार का पुतला नदी में गिरा दिया, राजा ने समझा कि उसका बेटा पानी में गिर गया, और वह तुरत उसे निकालने के लिए स्वयं नदी में कूद पड़ा और देखते-देखते उसे बाहर निकाल लाया। बज़ीर ने कहा, "महाराज, मेरे और इतने सेवकों के होते हुए, कुमार के नकली पुतले को बचाने के लिए, आपने किसी को नहीं कहा, और स्वयं ही मझधार में कूद पड़े। फिर मालिक तो हम सब का पिता है, और हम सब उसकी सच्ची सन्तानें हैं। हमें उबारने के लिए वह मालिक देवी-देवताओं को न भेज कर, स्वयं अवतार लेता है तो इसमें आश्चर्य क्या है? राजा समझ गया और वज़ीर की बात मान गया।

'परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे'॥

साधारणतया लोग इसका अर्थ करते हैं कि साधुजन की रक्षा के लिए और दुष्टों का नाश करने के लिए, तथा धर्म की स्थापना के लिए, मालिक हर युग में अवतार लेते हैं। किन्तु इसका सही अर्थ वह है कि साधुजन की रक्षा दुष्कर्मों का विनाश करने के लिए मालिक हर युग में अवतार लेता है।

मेरे एक विद्यागुरु ईसाई थे। उनका मुझ पर बड़ा

स्नेह था। एक बार वह मुझे गिरजाघर ले गए जहां उनका प्रवचन हुआ। प्रवचन में उन्होंने कहा कि ईसामसीह कृष्ण से श्रेष्ट हैं क्योंकि ईसा ने कहा है, "मैं गुनहगारों के लिए आया हूं, मैं दुष्टों के लिए आया हूं"। मगर भगवान कृष्ण ने तो कहा है कि, "मैं साधुओं के त्राण के लिए और दुष्टों का विनाश करने के लिए आया हूं"। इस प्रकार ईसा का आदर्श श्री कृष्ण के आदर्श को निस्बत ऊञ्चा है और ईसा का प्रेम आदर्श प्रेम है। इसलिए ईसाई धर्म श्रेष्ठ है। मेरे विद्यागुरु का अनुमान था कि मैं ईसाई धर्म अपना लूंगा। पर इसकी जरूरत नहीं, क्योंकि सनातन धर्म में, ईसाई धर्म तों क्या, सभी धर्मों का आदर्श मौजूद है। जब उन्होंने प्रवचन समाप्त किया तो मैं उठ खड़ा हुआ और बोला, "मैं भी कुछ कहना चाहता हूं"। गो मेरी अवस्था उस समय मन्त्र पन्द्रह वर्ष की थी, मैं स्टेज पर आया और बोला, 'गुरु जी ने यह कहा है कि भगवान कृष्ण साधुओं की रक्षा और दुष्टों के विनाश के लिए आए—

'परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्'।

इसका वास्तविक अर्थ यह है कि ये साधुओं के उद्धार के लिए तथा दुष्कर्मों का नाश करने के लिए आए। फिर भी अगर गुरु जी की बात मान भी ली जाए तो नवें अध्याय में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है—

'अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः'॥

अर्थात् जिसे आप अत्यन्त दुराचारी समझते हैं, यदि वह भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझे भजता है, मुझ से प्रम करता है तो वह साधु ही मानने योग्य है। इस प्रकार दुष्कर्म करने वाले को भी अपनी भक्ति में लगाकर साधु बना देना कोई मार-काट की बात नहीं है।

यह गुरु मत की परम्परा ऋषियों के समय से ही चली आ रही है। सद्गुरु बार-बार आता है—

'नाना भान्ति राम अवतारा।
रामायण शत कोटि अपारा॥

परम तत्व सर्वाधारा मनुष्य के चोले में बारम्बार आकर भान्ति-भान्ति की लीलायें करता है, अनेक रूपों में आता है। करोड़ों ब्रह्माण्डों के करोड़ों ब्रह्मा, विष्णु, शिव है, मगर राम एक है। वह दया—करूणा का भण्डार तभी होता है जब वह मनुष्य के चोले में आता है। भाव-अनुभाव आदि मनुष्य के चोले में ही होते हैं। देवताओं के भाव-अनुभाव नहीं होते। देवता तो निष्ठुरता से अपना स्वार्थ पूरा करते चले जाते हैं। प्रेम की पराकष्ठा तो वह मनुष्य चोले से में आकर ही दर्शाता है और

उसके मानव रूप से ही मनुष्य सच्चा प्यार कर सकता है—

'मेरे दाता शीश पर मेरे दया का हाथ रख ।
तू है दानी दीन बन्धु, जगत् का दातार है' ॥

उसकी दया तो हर समय मौजूद है। पर उसे लेने वाला पात्र होना चाहिए।

'फैज़ का दर हैं खुला, बन्द नहीं वह हर्गिज़ ।
शर्त है मांगने वाला कोई सायल आए' ॥

वह तो देने के लिए सदा तैयार बैठा है। कोई तड़प भरे दिल से मांगने तो आए। लोग कहते हैं कि सच्चा गुरु नहीं मिलता। मैं कहता हूं कि सच्चा शिष्य नहीं मिलता। सद्गुरु तो जगत् के अन्दर भी मौजूद है और जगत् के परे भी मौजूद है। जब वह इस जगत् में आया तो शिष्य बनकर आया।

'पहले दाता शिष्य भया, जिन तन मन अरपा शीष।
पीछे दाता गुरु भया, जिन नाम दिया बख्शीश।।

पहले तो शिष्य अपने प्रियतम प्यारे सद्गुरु को रिझाने के लिए अपने तन बदन को परवा नहीं करता, मन की कामनाओं को गुरु के लिए कुरबान कर देता है, और आत्मा के आनन्द की भी परवा नहीं करता। जब

शिष्य इस हद सक त्याग करता है, तब सद्गुरु रीझ कर उसे नाम की बख्शिश प्रदान करता है। नाम क्या है? नाम वह अवस्था, वह हालत है, जहाँ पहुंचने के बाद "मैं" और "तू" दोनों समाप्त हो जाता है। जहां प्रेमी और प्रियतम दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। राधास्वामी हालत का नाम ही है नाम। नाम की बख्शिश कैसे दी? शिष्य की सेवा परिश्रम की ऐवज़ या उसके बदले में नाम नहीं दिया जाता। नाम तो सद्गुरु दया से द्रवित होकर बख्शिश के तौर पर एक प्रकार से दान देता है। नाम दान सबसे महान् दान है। यह अभय दान हैं जिसकी कोई कीमत नहीं चुकाई जा सकती। शिष्य गुरु का दास होकर स्वयं मालिक बन जाता है। इसलिए सन्तमत की परम्परा में गुरु शिष्य को सम्मान देता है।

'शिष्य नवे जो गुरु को, यह जाने सब कोय।
गुरु नवे जब शिष्य को, बिरला जाने कोय'॥

प्रकाश में रहने वाला गुरु होता है। शब्द और सत की अवस्था में जो रहता है वह सद्गुरु है। वह दुःख-सुख, हानि-लाभ, जय-पराजय, निन्दा-स्तुति आदि हर प्रकार के द्वन्द्वों से ऊपर उठा हुआ है। उसकी दृष्टि में न कोई बुरा है, न अच्छा है। वह समता की अवस्था में रहता है।

'कबिरा खड़ा बजार में, सबकी मांगे खैर।
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से वैर'॥

सद्गुरु स्वभावत: अपने अनुभव को बांटता हैं। पर उसकी दया योंही नहीं मिलती है वह तब मिलतो है जब आप प्रेम करते हैं। प्रेम आप का सवाल है और दया सद्गरु का जवाब है। प्रेम के उत्तर में दया मिलती है। इसलिए परम तत्वाधार सद्गुरु जगत् का दातार है। सबको सब कुछ देने वाला है। सत्गुरु सत् में रहने वाला है। सत् की अवस्था में कोई "मैं"—"तू" नहीं है। सद्गुरु सत् को ही शिष्य में, और शिष्य में सत् को देखता है। जब तक ऐसा नहीं है तो वह सत्गुरु कैसा? इसलिए—

'गुरु नवे शिष्य को, बिरला जाने कोय'।

इसलिए जो अनुभवी गुरु होता है, वह शिष्य के चरणों में अपना सिर रखकर कह देता है, "तू मेरा सत्गुरु का स्वरूप है। परम दयाल जी महाराज ने दाता दयाल जी महाराज से कहा, "महाराज, मुझे आप वह गुरु रूप दिखाओ जो प्रकाश और शब्द से परे का हैं"। दाता ने कहा, "फ़कीर कल सुबह मैं तुम्हें वह रूप दिखाऊंगा"। दूसरे दिन प्रातःकाल जब परमदयाल जी महाराज दाता के पास गए तो दाता ने उन्हें फूलों की माला पहना कर माथे पर तिलक लगा दिया और एक

नारियल, पाँच पैसे उनके हाथों में रखकर उनके चरणों में अपना शिर नवा दिया ओर बोले, "फ़कीर, तू वक्त का सन्त सत्गुरु हैं। मेरा हुक्म मानो, लोगों को सत्संग कराया करो और नाम दिया करो। राधास्वामी दयाल तुम्हें सत्संगियों के रूप में मिलेंगे"।

गुरु-शिष्य का ऐसा अद्भुत सम्बन्ध दुनियां में कहीं भी हमें देखने को नहीं मिलता। दाता लिखते हैं—

'ना मैं राम कृष्ण का सेवक, ईश ब्रह्म नहि जानुं।
मैं तो नाम फ़कीर दिवाना, सबसे बढ़कर मानूं॥
जो फ़कीर मोहि दर्शन देवे, अपना भाग्य सराहूं।
अपने तन के चाम की जूती, पग फ़कीर पहनाऊं॥'

दाता ने अपने शिष्य के लिए क्यों कहा ऐसा ? क्योंकि वे सत् के अन्दर रच गए थे। वे स्वयं परम तत्व थे। ऐसा ही सद्गुरु अपने शिष्य के रूप में निज रूप को देखता है मैंने जब "सिद्ध सत्पुरुष फ़कीर बाबा" पुस्तक लिखी और उसके तीन अध्याय महाराज जी के पास भेजे तो महाराज जी ने मुझे खत लिखा— "शर्मा, मैं तीन महीने के दौरे से आज ही वापस लौटा हूं। तुम्हारे तीन अध्याय मुझे पढ़कर सुनाए गए। मैं सुन कर कहीं का कहीं पहुंच गया। अब मुझे यह आभास हो गया कि तेरी ज़ाते पाक के ज़रिये यह सत्यता धर्म (मानवता) दुनिया में फैलेगा ! फैलेगा !! फैलेगा !!! जो संस्कार दाता ने दिये

थे, वह तेरे द्वारा परिपूर्ण हो रहे हैं। अब मैं बहुत खुश हूं। अगर इसी समय मैं चोला छोड़ दूं तो मुझे कोई अफसोस न होगा'। एक पत्र में उन्होंने लिखा, 'इस बार बैसाखी पर तू जरूर आना। **I am waiting for Your Holiness.** मैं आप महाराज की प्रतीक्षा कर रहा हूं। मैं अपना सिर आपके कदमों में रखता हूं'। परम तत्व सर्वाधार मेरे कदमों में अपना सिर रख रहा है। लेकिन उनका प्रेम देखो। जो परम अवस्था का अनुभव कर चुका हो, वही ऐसा कह सकता है। मैं जो आप सत्संगियों को "सद्गुरु रूप" कहता हूं तो यों ही नहीं कहता। मुझे आपके अन्दर साक्षात् सत्गुरु रूप दृष्टि-गोचर होता है। इसीलिए हमारी परम्परा में गुरु शिष्य को नवता है। गुरु शिष्य को नहीं बनाता, शिष्य गुरु को बनाता है। 'उल्टा मारग सन्तमता है'।

'मेरे अनुभव में दया करुणा का तू भण्डार है'।

मनुष्य चोले में आ करके ही सद्गुरु दया-करूणा का भण्डार होता है। परम तत्वाधार, जो हमारा आदर्श है, वह दया-करूणा का भण्डार नहीं हैं। न ही वह हमारे काम का है। नर शरीर में आकर ही वह हमारे काम का है। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है—

'बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नर रूप हरि।
महामोहतम पुञ्ज, जासु बचन रविकर निकर' ॥

प्रेम जब भी होगा हम जिन्स से ही होगा। मनुष्य का प्रेम देव योनि से नहीं हो सकता।

गुरु के कमलवत चरणों को नमस्कार करने का भाव यह है कि ज्यों ही तुम चरणों में झुके कि तुम्हारा अहंकार गया। और ज्यों ही अहंकार गया, तुम तुरत ब्रह्म ऋषि हो गए। यही तो झगड़ा था विश्वमित्र और वशिष्ठ में। वशिष्ठ ब्रह्म-ऋषि थे क्योंकि वह सबमें परम तत्व की झलक देखते थे। लेकिन विश्वमित्र ब्रह्म-ऋषि नहीं थे। वे तप के बल से सिद्धि शक्ति के अहंकारी थे। इसलिए उन्हें राजर्षि कहा जाता था। विश्वमित्र वशिष्ठ को कहते कि आप मुझे ब्रह्म ऋषि कह दो। वशिष्ठ कहते कि तुम अभी ब्रह्मऋषि नहीं हुए तो मैं कैसे कह दूं? इसी झगड़े के कारण विश्वमित्र ने वशिष्ठ की गौवों को को नष्ट कर दिया और उनकी सन्तानों को मार डाला। एक बार रात के समय वशिष्ठ ने अपनी पत्नी को भोजन बनाने को कहा। पत्नी ने कहा कि घर में नमक नहीं है। वशिष्ठ ने कहा कि पड़ोस में विश्वमित्र जी हैं, उनके घर से उधार मांग लाओ। पत्नी बोली— "मैं आपके शत्रु से भला उधार मांग सकती हूं"? वशिष्ठ बोले— "भाई वह तो हमारे मित्र हैं। हमारा उनका झगड़ा तो केवल सिद्धान्तों का है, न कि शत्रुता का। वह तो

विश्व के मित्र, गायत्री मन्त्र के रचयिता और महान तपस्वी हैं"। उसी समय विश्वमित्र हाथों में पत्थर लिए वशिष्ठ को जान से मार डालने के लिए छिपे खड़े थे। वशिष्ठ के मुख से ऐसे सम्मान के शब्द सुनते ही हाथों का पत्थर एक तरफ फेंका और वशिष्ठ के चरणों में जा गिरे। वशिष्ठ ने तुरत उन्हें उठाते हुए कहा—"हे मेरे प्यारे ब्रह्मर्षि बिश्वमित्र उठो"। विश्वमित्र बोले— "महाराज, आपने मुझे ब्रह्मर्षि कहा!" वशिष्ठ बोले— "हाँ कहा!" विश्वमित्र बोले— "अगर पहले ही कह दिया होता तो मैं कभी आपकी गौवों और सन्तानों को नष्ट न करता"। वशिष्ठ बोले— 'पहले तो तुम ब्रह्मर्षि नहीं थे। आज तुम ज्यों ही चरणों में झुके, तुम्हारा अहंकार मिट गया, और तुम ब्रह्मर्षि हो गए"।

गुरु के चरणों में नमन करने से आप का अहंकार चला जाता है। और जब आप मालिक पर विश्वास करते हैं तो मालिक आपको ऊपर उठा लेता है। तभी कहा गया है—

"बन्दौं गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महामोह तुम पुञ्ज, जासु बचन रविकर निकर"॥

मालिक जब नर रूप में आता है तो वह कृपा-सिन्धु होता है। सत्गुरु के वचन रूपी सूर्य की किरणों से जीव का घनघोर अज्ञान रूपी अन्धकर नष्ट हो जाता है और

ज्ञान का महा प्रकाश हृदय में उदय हो जाता है। मोह समाप्त हुआ नहीं कि तुम पुण्य-पाप आदि द्वन्द्व अवस्था से ऊपर उठे नहीं।

'मेरे अन्तर में समाना, मेरे सांसों-सांस में ।
तू है व्यापक यह समझ दे, सच्चा जो अधिकार है' ।

यही इच्छा है कि मालिक हमारे हृदय में समा जाएं। वैसे तो हम उनके अन्तर समाए हुए हैं। पर व्यापकता की समझ हमें तब आती है जब हम पूर्ण रूप से अपने आपको गुरु के शरणागत कर देते हैं। प्रेम के अन्तर्गत दो बातें होती हैं— प्रथम तो यह कि प्रेमी अपने आपको भूल जाता है । दूसरा यह कि वह अपने प्रियतम का ही रूप (तद्रूप) हो जाता है। सत्संगत के चार दर्जे होते हैं—

1. पहले तो सत्संगी कौतुक वश आता है और सत्संग में दूर ही बैठता है और केवल वहां का माहौल दूर से देखता है। जिस तरह गंगा के किनाते रहने वाले पण्डे गंगा में नहीं नहाते बल्कि अपने घर के नलके या कूएं में नहाते हैं। लेकिन उस क्षेत्र के नलकों और कुओं में भी गंगा का पानी ही होता है और उन पण्डों पर गंगा के पानी का असर होता है और उन्हें उसका परोक्ष लाभ मिलता है। इस प्रभाव को सालोक्य कहते हैं।

2. मगर जो गंगा के किनारे धारा के पास पहुंच

गए तो उसकी पवित्र शीतलता हवा के झोंकों के ज़रीये उसे मिलती है। ऐसे ही सत्संग में आ जाने से गुरु के के दर्शन और उनकी निकटता का लाभ व्यक्ति को होने लगता है। इस प्रभाव को सामीप्य कहते हैं।

3. नज़दीक आने पर आपका जी करता है कि गंगा की धारा में डुबकी लगा लें। आप कपड़े उतार कर गंगा की धारा में डुबकी लगा देते हैं तो इतना आनन्द आता है कि पानी के अन्दर आप ओत प्रोत हो जाते हैं। गुरु का नाम लेते-लेते प्रेम में आप इतने डूब गए कि हर जगह गुरु का ही रूप दिखाई देने लगा। यह जीवन-मुक्ति की अवस्था है। इस दशा में "मैं" नहीं रहता; हर जगह तू ही तू दिखाई देता हैं।

'जब मैं था तब तू नहीं, अब तू हैं मैं नाहिं।
प्रेय गली अति साँकरी, वामें दो न समाहिं' ॥

शिष्य गुरु के रूप में तद्रूप हो जाता है। जैसे मालिक किसी के प्रति वैर भाव नहीं रखता, वैसे ही प्रेमी के अन्दर भी किसी के प्रति शत्रुता-मित्रता नहीं रह जाती।

'तू-तू करता तू भया, मुझमें रही न हूं।
बलिहारी तेरे नाम की, जित देखूं तित तू' ॥

यह तीसरी अवस्था सायुज्य कहलाती है।

4. अब चौथी अवस्था यह है कि पानी में डुबकी लगाई फिर बाहर निकला ही नहीं। पानी में मिलकर ही पानी हो गया। यह तादात्म्य की अन्तिम अवस्था है। प्रेमी अपने प्रियतम में विलीन हो जाता है। यह अवस्था सारूप्य की है। यह चार दर्जे सत्संगी के होते हैं।

'मेरे अन्तर में समाना, मेरे सांसों सांस में।
तू है व्यापक यह समझ दे, सच्चा जो अधिकार है'॥

जब यह ज्ञान हो गया कि हर एक रूप में सद्गुरु ही व्यापा हुआ है, हर एक के अन्दर उसकी ही झलक दिखाई देती है, और मैं स्वयं भी उसी की झलक हूं तो फिर अब नफर किससे और क्यों की जाए? अपने आप से ही नफरत करने का सवाल ही नहीं रहता। सत्गुरु सत में रहने वाला है। वह किसी के प्रति कोई भेद-भाव नहीं रखता। जहां भेद भाव है वहां प्रेम नहीं होता।

'आस रखकर गुरु कृपा की, नित करो अभ्यास तुम।
रात दिन पल छिन तुम्हारा, वह सदा रखवार है'॥

सन्त मत की यह विशेषता है कि इसमें ज़बानी जमा-खर्च नहीं होता। जो इष्ट हमने धारण किया है, जिसको हम मिलना चाहते हैं, वह तभी मिलेगा जब हम लगातार ऐसी करनी करें, ऐसा व्यवहार करें कि

द्वैत भाव, भेद भाव मिट जाए और प्रियतम की ज़ात ही रह जाए । इसके लिए अभ्यास और परिश्रम करना पड़ता है । अभ्यास कैसे किया जाए ? अभ्यास गुरु की आस लेकर किया जाए। यदि आप किताबें और पोथी पढ़-पढ़ कर अभ्यास करेंगे तो मञ्जिल मिलना मुश्किल हो जाएगा। इसमे कोई शक नहीं कि गुरु हमसे करनी कराता है।

'यह करनी का भेद है, नाहीं बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करे, तब पावे कुछ सार' ।।

अभ्यास है क्या ? अभ्यास प्रेम ही तो है। जिस सदगुरु के सत्संग में बैठ कर आप उसका साक्षात्कार करते हैं, उसी से प्रेम-प्यार करना ही तो अभ्यास है। जिसको आपने आदर्श माना हुआ है, उसकी कृपा लेकर अन्तर में प्रेम करना ही अभ्यास है। दाता दयाल जी ने अपने हर शब्द में गुरु कृपा को ही मुख्य बताया है। क्योंकि केवल तुम्हारे अभ्यास से तुम में सिद्धि शक्ति हो सकती है। सम्भव है कुछ अनुभव भी हो जाए । लेकिन गुरु के सत्संग और कृपा के बिना मंजिले मक्सूद नही मिल सकता । आवागमन से छुटकारा नहीं मिल सकता । जब अभ्यास से नीचे आओगे तो तुम्हारा मन फिर विचलित होगा। सम्भव हैं 'सुरत समानी शब्द में, वाको काल न खाय' का अनुभव भी हो जाए। लेकिन सत्संग बिना नाम

की अवस्था में ठहरना असम्भव है। इसीलिए सत्संग को महिमा बताई गई है। ऊञ्चे से ऊञ्चे दर्जे के अभ्यासी को भी सत्संग अज़हद जरूरी है। सत्संग शुरू में भी, मध्य में भी और अन्त में भी अनुभव होने के बाद भी परमावश्यक है।

'कर गुरु की संगत रात दिन,
नर जन्म अपना सुधार ले।
दे फेंक माया बोझ सिर से,
यम का शीश न भार ले'॥

कितनी ज़बरदस्त गारण्टी दी गई है! कृष्ण ने भी ऐसी ही गारण्टी दी है—

'सर्व धर्मापरित्यज्य, मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः'॥

अर्थात् सब धर्मों को छोड़ कर मेरी शरण में आजा। सभी रुकावटों से बचा कर तुम्हें अपने आप में ले लूंगा। और यही बात दाता दयाल जी कह रहे हैं—

'कर गुरु की संगत रात दिन,
नर जन्म अपना सुधार लें।
दे फेंक माया बोझ सिर से,
यम का शीश न भार ले'॥

लगातार गुरु की संगत का मतलब सदा उसी का ध्यान, उसी से प्रेम करना। लेकिन अन्धी भक्ति नहीं होनी चाहिए।

एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनों उनके पैर दबाया रते थे। दोनों ने गुरु के दो पैर आपस में बांट लिये थे। एक शिष्य गुरु के दाहिने पैर को दबाता, दूसरा बाएं पैर को। एक बार एक शिष्य कहीं बाहर चला गया और दूसरे शिष्य को ताकीद कर गया कि "गुरु जो के मेरे वाले पैर, अर्थात् दाहिने पैर को हाथ न लगाना"। पैर दबाते समय गुरु जी ने अपनी दाहिनी टांग बाई टांग पर रख दिया। शिष्य को गुस्सा आ गया और उसने गुरु जी की दाहिनी टांग पत्थर मार कर तोड़ दी। दूसरे दिन जब शिष्य लौट कर आया तो उसने देखा कि उसकी (गुरु जी की) दाहिनी टांग को दूसरे शिष्य ने तोड़ डाली है तो उसे भी गुस्सा आ गया और उसने गुरु जी की बायीं टांग भी तोड़ डाली। और गुरु जो परलोक सिधार गए। ऐसी मूर्खता पूर्ण अन्ध भक्ति नहीं करनी चाहिए।

'कर गुरु की सेवा रात दिन,
नर जन्म अपना सुधार ले'।

गुरु की सेवा का तात्पर्य गुरु की शिक्षा और आज्ञा र सदैव अमल करना है। जन्म सुधार लेने का भाव यह है कि मन की धारा में न बहते हुए, गुरुमुखता की सु-धार– सुधरी हुई सुन्दर धारा में चले अर्थात् राधा बन जाए। धारा में बहने से डूब जाओगे। जब धारा से राधा बनोगे तब सुधार हो जाएगा।

'तू शीश दे तन मन को दे,
गुरु भक्ति रत्न अमोल ले।
राधास्वामी भेद बताया तुझको,
हिय तराजू तोल ले'॥

राधास्वामी अवस्था में रहने वाला सद्गुरु तुम्हें युक्ति बता रहा है कि तुम्हारे मस्तिष्क के अन्दर जो कुछ भी अच्छे बुरे विचार भाव हैं सबको अर्पित कर दो, तन की सुध न रहे, मन की सुध न रहे और आत्मा के आनन्द की भी सुध न रह जाए। जब पूरी तरह से गुरु के प्रेम में लीन हो जाओगे तब तुम्हें सद्गुरु भक्ति का अनमोल रत्न प्रदान करेंगे, जिसके मिलने से तुम्हें सब कुछ मिल जाएगा। भक्ति रत्न की कोई कीमत नहीं है, वह अनमोल है।

राधास्वामी हालत की मस्ती में रहने वाले सद्गुरु ने तो स्वयं तुम्हें सार भेद दे दिया और तुम्हें पूरी आज़ादी भी दे दी कि इस रास्ते पर चलो या न चलो, यह तुम्हारी मर्ज़ी पर है। यह तुम्हारा नया कर्म है। क्योंकि तुम स्वयं परम तत्व हो, और परम तत्व की यह पहचान है कि उसमें संकल्प की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। सद्गुरु के सार भेद उपदेश और चेतावनी के बावजूद भी अगर तुम उसके बताए रास्ते पर नहीं चलते तो यह तुम्हारा नया कर्म होगा जो तुम्हें बान्धेगा।

'छोड़ ममता छल कपट चतुराई, गुरु से नेह जोड़।
भक्ति उसकी कर वह सच्चा प्रेम का भण्डार है'॥

गुरु को सर्वव्यापकता का अनुभव तब होगा जब आप सच्चा प्रेम करोगे। सच्चे प्रेम में तुम्हें हर जगह गुरु ही दिखाई देगा। परम दयाल जी महाराज कभी-कभी कहते थे कि "मैं सत्य का अवतार हूं"। कभी कहते कि मैं कुछ नहीं हूं। अन्त में कहा—

'राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी को सुमरि।
राधास्वामी सर्व रक्षक, सर्वेश हितकार है'॥

सद्गुरु से सच्चा प्यार होने से आप पराकाष्ठा पर पहुंच जाते हैं। 'राधास्वामी' तीन बार क्यों कहा? इसका अभिप्राय यह है कि शरीर में राधास्वामी, मन में राधास्वामी, और आत्मा में भी राधास्वामी हो। चौबीस घण्टे राधास्वामी नाम की धुन रोम-रोम में गूञ्ज उठे।

'रोम-रोम रग-रग मेरी बोली।
राधास्वामी राधास्वामी घुण्डी खोली'॥

रोम-रोम में गुरु और उसका प्यार बसा हुआ है। राधास्वामी अवस्था में पहुंचा कर राधास्वामी ने जड़-चेतन की ग्रन्थि को खोल दिया।

'कोटि कोटि करूं वन्दना, अरब खरब दण्डौत।
राधास्वामी मिल गए, खुला भक्ति का स्रोत'॥

आम आदमी यह समझता है कि राधास्वामी की वन्दना और दण्डवत बारम्बार करने से राधास्वामी उधर से आते हुए मिल गए। यह गलत विचार है। भान यह

है कि सद्गुरु के चरणों में वन्दना करते-करते अहंकार समाप्त हो गया और सुरत-शब्द मिल कर एक हो गए। गुरु और शिष्य एक हो गए। समय का सद्गुरु आगे होने वाले सद्गुरु को भेद दे जाता है। उसे कह जाता है कि "अगर तुम केवल वाणी का पाठ करते रहोगे तो सार तुम्हारी समझ में नहीं आवेगा। अनुभव हो जाने के बाद, अनुभव के आधार पर व्याख्या की जाएगी, अपना अनुभव बांटा जाएगा, तब मञ्जिले मकसूद मिलेगी। इन शब्दों के साथ मैं आज सत्संग समाप्त करता हूं और सच्चे दिल से चाहता हूं कि आप सब इस सत्संग से प्रेरणा ग्रहण कर पारां, भक्ति में रत हो रहें और आपका लोक-परलोक दोनो बन जायें।

॥ सबको राधास्वामी ॥

दशहरा सत्संग—दौरा कार्य-क्रम

1996

दिनांक	कार्य-क्रम	स्थान व पता
29-9-96	प्रस्थान प्रातः होशियारपुर से सत्संग दोपहर	अम्बाला सिटी, हरियाणा श्रीकृष्ण लाल जी अग्रवाल क्लाथ एजेंसी देव समाज मन्दिर मार्केट

30-9-96	सत्संग	श्री रामकुमार उपाध्याय **Tel. 77234** अमीन, कुरुक्षेत्र
1-10-96 2-10-96	यमुनानगर पहुंच सत्संग प्रातः	श्री रमेश चन्द्र गोयल 115, शास्त्री कालोनी यमुना नगर **Tel. 27580**
3 10-96	सरसोंहेड़ी पहुंच	श्री देवदत्त त्यागी इन्जीनियर सरसोंहेड़ी
4-10-96 5-10-96	सत्संग प्रातः मुजफ्फर नगर पहुंच	श्री रूपेन्द्र बात्रा 39, काजियां, लोहिवा बाजार मुजफ्फर नगर
6-10-96 7-10-96 8-10-96	सत्संग प्रातः सत्संग सायं बनवारीपुर सत्संग सायं	मुण्डभर की महेशचन्द्र त्यागी पो० मीरपुर. बनवारीपुर मेरठ
9-10-96	गाजियाबाद सत्संग सायं	श्रीकृष्ण स्वरूप सूद साहिबाबाद 2/27 सेक्टर-5 राजेन्द्र नगर गाजियाबाद **Tel.7 63128**

10-10-96	दुर्गापुर सत्संग प्रात:	श्री गुरुदत्त शर्मा राज. प्राइमरी स्कूल
11-10-96	शहजापुर सत्संग	श्री श्याम लाल शर्मा सोनीपत शहजादपुर (हरियाणा)
12-10-96	अलवर पहुंच	श्री मूलचन्द गान्धी एडवोकेट
13-10-96	अलवर सत्संग प्रात:	अलवर
14-10-96	जयपुर सत्संग सायं	श्री महाराज कृष्ण जी शर्मा सी 16 बी मोती मार्ग बापू नगर
15-10-96	भीलवाड़ा पहुंच	श्री तेजेन्द्रमणि गुप्त सन्तमत सत्संग केन्द्र
16-10-96	भीलवाड़ा सत्संग प्रात:	1-A-5 शास्त्री नगर
17-10-96	भीलवाड़ा सत्संग प्रात:	भीलवाड़ा (राज.)
18-10-96	प्रात: प्रस्थान दिल्ली को	
19-10-96	सत्संग सायं	सालवान पब्लिक स्कूल
20-10-96	सत्संग प्रात: सायं	ओल्ड राजेन्द्र नगर
21-10-96	आशीर्वाद सत्संग प्रात:	नई दिल्ली

22-10-96	प्रस्थान मुरैना (मध्य प्रदेश)	श्री हरि विलास रावत
23-10-16	सत्संग	नं. 8. वार्ड-1. सिंघलपुरा जोरा (म. प्र.)
24-10-96	होशियारपुर पहुंच	

विशेष सूचनायें—

(1) अगले सत्संग केन्द्र स्थान से किसी अधिकृत कार्यकर्त्ता को पूर्व सत्संग केन्द्र स्थान पर हजूर महाराज जी की अगवानी के लिए समय से पहले पहुंचना अनिवार्य है, अन्यथा अगले केन्द्र स्थान का सत्संग निरस्त कर दिया जाएगा।

(2) विशेष परिस्थिति में निर्धारित कार्यक्रम में परिवर्तन करने का अधिकार सुरक्षित है।

(3) यात्रा के पेट्रोल का व्यय केन्द्र व्यवस्थापक को वहन करना होगा।

जनरल सेक्रेटरी

मानवता मन्दिर,
होशियारपुर।

गरुड़ पुराण रहस्य

तृतीय भाग

गरुड़ पुराण पर प्रश्नोत्तर

परमसन्त परमदयाल

पण्डित फकीर चन्द जी महाराज

तृतीय सत्संग

(हनम कुण्डा 20. 1. 64)

गुरु नहिं भूका तेरे धन का।
उन पै धन है भक्ति नाम का ॥
पर तेरा उपकार करावें।
प्यासे भूके को दिलवावें ॥

तथा—

गुरु को ऐसा चाहिए, शिष का कछु न लेय।
शिष को ऐसा चाहिए, गुरु को सब कुछ देय ॥

ऐसे लोगों के लिए मानवता मन्दिर वनवाया हुआ है। उसमें बहुत सी विधवाओं की पेन्शन लगाई हुई है। (श्री गिरधर सिंह बारंगल निवासी को संकेत करते हुए कहा) ऐ गिरधरसिंह! तुमको मालिक इतना देगा कि कमी न रहेगी। यदि आमदनी बढ़ जाय तो फ्री अस्पताल खोल देना।

देखो! मेरी स्त्री पैसा-पैसा करती रहती थी। मैं फकीर हूं। मैंने कभी पैसे की परवाह नहीं की। वह धीरे-धीरे जोड़ती रही और मरते समय 3969 रु. छोड़ गई। सोचता हूं वह जोड़-जोड़ कर मर गई। क्या साथ ले गई!

कहा है—

खाय पकाय लुटाय कर, कर ले अपना काम ।
चलती विरिया रे नरा, धर्म ही आवे काम ॥

मगर इसका अर्थ यह नहीं कि आदमी अपनी कमाई का दुरुपयोग करें, व्यर्थ करें और नेक काम के लिए पैसा जोड़ें नहीं। अपने पैसे का सदुपयोग करो और वह यही है जो गुरु तुमको बताता रहे। मगर आजकल के तो गुरु लोभी लालची होकर चेलों से धन छीन कर अपना काम बनाते हैं। ऐसे गुरुओं से बचना चाहिए।

मन और धन की सेवा तो बता दी गई। अब रही तन की सेवा, तो वह भी गुरु की आज्ञानुसार निष्काम भाव से करनी चाहिए। तो गुरु-भक्ति से क्या मिला? हमको समझ आ गई। अपने निज स्वरूप का ज्ञान हो गया। फिर यमराज का नाता छूट गया। इस रहस्य को सन्तों ने पहिले भी सैन वैन में कहा था मगर जो समझने वाले थे समझ गये। जो नहीं समझ सके वह कोरे रह गये। मैं डण्डे मारता हूं। अर्थात् बात को स्पष्ट करके कह रहा हूं। जो मेरा सत्संग सुनते हैं और केवल सत्संग की नीयत से आते हैं उनका बेड़ा पार है। राधा-स्वामी दयाल ने भी अपनी वाणी (माया संवाद) में ऐसा ही कहा है। वहाँ माया कहती है कि स्वामी जी आपने जीवों को रास्ता बड़ा सुगम कर दिया। यदि जीव तेरे हैं तो मैं भी तो तेरी हूं। इस पर स्वामी जी का उत्तर है कि ऐ माया! मैंने तेरे सब छल बल तोल लिए हैं। मेरा जीव तू नहीं ले जा सकती। वह सत पद जायगा।

माया संवाद में स्वामी जी के उत्तर का भाव जो मैंने समझा है वह यह है कि जो उनके वचनों को समझेगा, गुनेगा, मनन करेगा और उन पर चलेगा वह माया के चक्र में नहीं फंस सकता। केवल राधास्वामी मत में शामिल होने अथवा राधास्वामी-राधास्वामी कह देने मात्र से काम नहीं निकल सकता। इसी तरह जिन्होंने ध्यान पूर्वक मेरा सत्संग किया है और रहस्य को समझा है उस पर मनन किया है वे मन के ख्यालों में नहीं फंस सकते। सत्संग से असली लाभ उन्हीं को होता है जो परमार्थ की दृष्टि से सत्संग में आते हैं। इसीलिए मैं बार-बार कहा करता हूं कि सत्संग बच्चों का तमाशा नहीं है और न कोई सामाजिक मीटिंग है। सत्संग में सत्संग की गरज से जाना चाहिए। सुनो! वाणी में आगे कहा गया है—

धन्य भाग हम सतगुरु पाया।
चढी सुरत मन गगन समाया॥

यह गगन तुम्हारा दिमाग है। जब मनुष्य सत्संग की बात को दिमाग में रखकर संकल्प विकल्पों को छोड़ देता है तो निर्विकल्प यानी संकल्प रहित अवस्था में चला जाता है और तब उसे मस्ती या आनन्द मिलता है और वह उसमें झूमता है।

(वाणी में फिर आगे आता है—)

सखियां मिल सब गावन लागी।
माया ममता देखत भागीं॥

जब मन में संकल्प नहीं उठते तो खुशी, मस्ती, आनन्द की अवस्था आ जाती है। उस समय माया और ममता किनारा कर जाती हैं अर्थात उनका कोई प्रभाव मनुष्य पर नही रहता। इसको स्पष्ट रूप से और समझ लो। लोग अभ्यास करते हैं। अन्तर में जाकर मन से लड़ाई करते हैं। मन तरह-तरह के संकल्प उठाता है और तुम उनको हटाना चाहते हो, मगर मन जब काबू आयेगा गुरु द्वारा आयेगा।

तुम लोग सोचते हो कि फकीर बाबा या अपना गुरु आयेगा। वह इस मन पर काबू दिलायेगा मगर फकीर या दूसरा गुरु आयेगा वह भी तो तुम्हारा अपना मन ही होगा। यह तुम्हारे ही मन को कल्पित मूर्त्ति तो होगी। फिर मन कहा काबू में आया ? लोग अभ्यास करते हैं, मन की तरंगों को रोकना चाहते हैं मगर सफलता नहीं मिलती।

(क्रमशः)

नारायण दास डोगरा

परमदयाल सर्वहतकारी मानवता मन्दिर,

फकीरधाम, सरड़ डोगरी, बरास्ता रक्कड़ ज़िला कांगड़ा,

हिमाचल प्रदेश

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

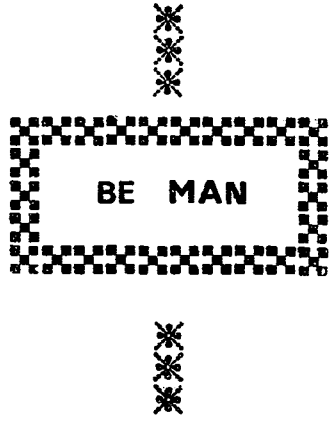

Tuesday, 10th Sep ember, 1996

MANAVTA MANDIR

Hoshiarpur (Pb.) India

DAYAL YOGA

PART I

The birth of a Saint

Data Dayal Maharishi Shivbrat Lal Varmanji Maharaj

was the manifestation of pure-spirit

We have already mentioned the most sacred day of February 1860 A. D. Mahashivaratri when one of the Greatest Saint an intellectual, talented genius born was (Born is misnomer, as Saints from the pure spirits Fount-Head manifest or descend to Earth) in a noble Zamindar Srivastav Kaisth family. The entire family tree represents intellectuality. All were educated, cultured and God fearing men and women. Because it was the day

of Shiv Puja, the infant (Saint) was named Shiv Brat Lal. "Shiv" represents Lord Shiva, "Brat" reflects fasting (self denial on Shiv Worship day and 'Lal" can mean a divine gift or a diamond, It was a most appropriate name spiritually and symbolically. The name as is apparent had all the qualities of godliness and religious sentimentality. This aspect coupled with the auspiciousness of the day dedicated and appropriated to one of the deities of Hindu Trinity produced a unique electrifying and glorious Divine Personality. Shiv Shakti of Hindu Trinity means prosperity and happiness. It represents Tamo-Gun an attribute which signifies and means involuntary actions and their regularity gives prosperity and happiness. Tam also means static, akin to sound sleep, trance or samadhi. There are various aspects of Samadhi. Shiv Samadhi is the real Samadhi complete and final. So every thing was predetermined and predestined for the infant saint. No wonder it fell to his lot to collect all data about Saints, Upnishads, Hindu Shashtra and almost all religious philosophical thought of ages past and of the time in which he lived worked, sermonised and wrote. It was he

who perfected the Saints Yoga and broad based it scientifically. It remains no more a mystery except that he has not disclosed certain vital aspects relating to mental audition of the celestial song, music or shabd and the centres, which still remain the preserve of the adept i. e., spiritual teacher. This is as it should be, for if it were revealed every John, Dick and Harry with little common sense would start preaching for profit and hoodwink or cheat many innocent seekers of Truth. As it is we find what ever Data Dayal has said and written is being misused.

We have amidst us Ishth Yogis, predictors and Prasad givers. Just fancy the so called preceptor touches an article of food value and it is transformed into sacred divine gift, which is supposed to cure all aliments. The holy power that is pushed into it does not take ten to twenty seconds, not more than a minute. (The interpreter knows a real Saintly Divine personality whose prasada has invariably proved efficacious, He is the author of Dayal Yoga. He does not talk about it nor it is published. He neither asks people to aspire for

such superstitious ideas. But those who seek it are gifted Prasada with love. We have verified its efficacy in some sixty odd cases so far. We also have seen others touching the article of food and offering as Prasada. The result is anyboby's guess. They themselves admit its impotence. but accept they are compelled to do so. Why do it ? We have heard one such personality with a large following saying "Well, what can one do if people have blind faith". It is even so. What must the spiritualist do ? (The interpreter in us feels aghast at such a state of affiairs, Why cannot such high personalities refuse to do such tamasha. It is felt all is done to maintain false dignity i.e., to avoid unpopularity). The spiritualist will naturally refuse to perform such silly and false miracles, otherwise he is fake and fame seeker.

We believe certain ailments can be cured by faith. Faith healing is a science. But it cures diseases of mentality not of the spirit or physicality. We do know what we are talking about. We know what Prasada means and how much efficacious it can be and under what circumstances. One of the

Upnishads describes the sanctity of Prasada and it is linked with faith. Data Dayal has discoursed on it. But human memory is too short and Limited; even the gurudom of to-day is ignorant. In this work, we will confine our remarks to say "The lure of making and asking or receiving Prasada is a dangerous toy to play with. The earlier it is done away with, the better for the giver and receiver. It is a different matter if the disciple offers some adible in shape of fruit, sweet or some such sort in utter reverence and without motive and the Guru accepts it, distributes it and gives a little to the giver, it is useful in more ways than one. One must not visit a holy man, an elder or a child empty handed. He who does so returns without any gain. The child will not response to his love. The elder will turn a deaf ear and the Guru though ever merciful will not be able to give him any thing as it happens when he takes something which is distributed amongst those who are present. That is Santmat. Details in another work.

Data Dayal's life story will fill volumes. Some day some one will attempt and do justice. It is a

long work. Material will be difficult to get except from one source "Dayal". We are giving glimpses only.

The family tree is given below—

GRAND FATHER

Munshi Kavel Kishore Vakil in the Court of Maharaja of Benaras.

Father : Thakur Shiv Sampat Lal Zaminder.

Data Dayal's birth took place in a village called "Kanungoyan" District Bhadaui, Benaras State Now called Varanassi). He received his Elementary and Primary education in Gianpur District Bhadaui. He was well versed in Urdu, Hindi, Persian, Arabic and Sanskrit. In the initial stages only He learnt Gulistan, Bostan and Mansavi of Maulana Rum and attained perfection in these. A very great feat. Besides he

read Tulsidas's Ramayana and knew it by heart. He received his Secondary (High School) and College education in Allahabad. He obtained His M.A. Degree from the University of Allahabad.

Maharishi jee was married to Shrimati Pujya Jasodha Kanwar the eldest daughter of Munshi Prashad Zamindar of Bandhori, District, Sachvara, Allahabad. She gave birth to three daughters--

(1) Sahdaiji Kanwar.

(2) Chunman Devi.

and

(3) Munman Devi.

Sahdaiji Kanwar was married to Babu Har.har Sahai Zamindar of Gorakhpur. Chunmun Devi was married to Munshi Gauri Shankar Lal Akhtar (Editor Mansarovar Allahabad; son of Babu Basheshar Dayal of Allahabad. Munman Devi was married to Babu Jalpa Prashad M. Sc. Professor Kaisth Pathshala College Allahabad son of Babu Iqbal Bahadur of Benrach.

EARLY LIFE AND SEARCH OF REALITY

Data Dayal after completing His education was appointed as Tauluqdar in the State of Rewa. He was a Faqir at heart and liked simple living. He did not like to live a life of name, fame and high status of those days. He left the post. He went to Culcutta for a time and devoted His thought in the commercial field. That required money. He could not get money in time. So both the administrative and Iudustrial fields lost a gem of unlimited ability, means. force and energy which could have changed the whole atmosphere of the nation as a whole to a much better state than it is in to-day. He returned home. Accepted the post of Headmaster-ship of the Mirzapur Mission High School. As service brings changes in place of work (particularly in educational line in the higher group) He was transferred from Mirzapur to Chanar, Benaras and Barajlee. In the year 1896/97 when he was Headmaster of the Arya Samaj High School, He wrote dozens of books on culture and behaviour of men and women and other religious

works. The books were titled "Our Mothers, True Devian (Virtuous) women), True Istarian (Women), Hindu matain (mothers), Sati Britant (Narrative of Ladies who committed suicide), vir vritant (valrous person's life stories) Rajasthani Vir Rani's (valrous queens), Deeds of Rajput ladies, Invasions of Chitaur, Prithvi Raj, Alahavdal, Hamir Hath, Brave deeds of talented and valrous ladies of Bharat, Ramayana, Maha Bharat, Kalyan Dharma Biography of Bhagwan Budha's large edition). Sankhaya philosophy. Yoga philosophy, Tambaku Muadan. Ethics etc., etc. These books became very popular sooner the came out of the press. Thousands of people read them all over the country with approval eagerness, love and respect. These are still very popular and the enthusiasm has in no way diminished with the passage of time. One wonders if any one man has ever written so much in the course of one year (1896/97). We asked The Great Master in 1923 when we visited him, to describe or explain how he managed to write so many works in the course of one year. We were young and keen to learn the hidden secret. With all humility, which was most sincere, we also

enquired if the popularity, fame and name that accompanied the publications did not create a sense of elation in the Great Master in those days. He smiled and went into deep meditation for some three minutes. He opened his eyes and fonnd us looking straight on his face with hands on his holy feet. We repr duce the words that the Great one uttered in Urdu which read as under—

"My association with the reformist school (Arya Samaj) gave me the urge to write about Hindu brave women, men and explain social, moral, religious back ground and strueture as a whole to inculcate the sense of respect in the reformist society which was bent upon criiticising any thing or every thing Snatanisht (ancient Hindu a culture, religious philosophy etc.). Since I had no motive of my own Nature helped me to write and attend to my school work Yes, I d d feel elated for some little time. but I soon recovered and controlled myself. You must take a lesson from my personal exper ence. Hazur Maharaj will ever bless you. (Hazur Maharaj was the Great Master's spiritual Teacher)". All our fortune, joys and happiness is

his gift. He was all mercy to his foster child disciple. It is difficult to pen such thoughts, but all we have is his and his only. Nothing belongs to us.

The year 1901 brought a tragedy, Data Dayal's beloved consort passed away. It was the sadest occasion of his life. He left his home and hearth and became a lonely wanderer. In his travels he reached Hardwar where all his books were printed and published in Sat Dharam Parcharak Press through the help of late Mahatma Munshi Ram. The Manager of the Press Pandit Keshav Dev Shasthri was his friend. He lived there for some days.

At that time Mahatma Hansraj and the Great patriot Lala Lajpat Rai' were at Hardwar. To them Maharishi jee appeared visibly sad at heart due to the sad and most untimely demise of his wife. They thought out a plan and offered Editorship of the famous Arya Gazette Lahore to Maharishi jee. It must have been a good piece of job as Data Dayal was a free thinker and did not live in water tight compartments or ideologies. Data Dayal was not only given freedom, but was made wholely

responsible and incharge of the Arya Gazette. That was the time when the Aaya Samaj was passing through a crisis. There was a stiff tug of war between two groups that had emerged in the organisation. They were vehemently opposed to each other. One party believed in vegetarianism and the other in non-vegetarianism Both were powerful groups and influential. Great danger lurked in the Arya Samaj camp. Maharishi jee's Editorship and writings succeeded in eliminating the dangerous split and quarrel between the two opposing groups on the most important question of vegetarianism and non vegetarianism in very short space of time, hardly it took a few months. The hearler healed the wounds. At least there has been no trace of this poisonous malady since then. All bitterness vanished. Maharshi jee started revealing the brighter side (good points) of Puranic thought; introduced the word "Hindu" for "Arya" in his writings liberally; gave due respect and adoration to the Incarnations of Shri Rama, Shri Krishna, Foremost Saint Kabir, Guru Nanak Dev and Budh Bhagwan in the Arya Gazette. This was taboo to all Arya Samajists who preached loudly diverse, derogatory and disrespectful views and thoughts against Hinduism's

religions philosophy of Gnana, devotion, Karm-kand rituals and ceremonials. They condemned followers of Kabir and Guru Nanak. They spared none. The Vaishnava, Shivaits, believers in Hindu Shashtra, Incarnations, Hindu Trinity, Muslims, Christians Budhists, Sikhs alike, came under fire. It was an all out campaign of hate against all religions except the Vedic Dharma as enunciated by the learned Swami Daya Nand Saraswati. It had its reactions. Data Daval's aim and mission was to root out the cause of religious conflict, friction, fenaticism, begotism and usher in an era of peace and unity i. e., co-existence and harmony in matters religious.

CONTINUED

SAT SANATAN DHARMA

OR

SAT MANAV DHARMA

Param Sant Param Dayal
Pandit Faqir Chand ji Maharaj

PENITENCE

9-5-1968

By Sat Sang at Guru's feet

Even a person having the mental make-up of a heron

Can attain to the status of a SWAN.

Even person having mean motives on coming to a Sat-Sang start thinking on correct lines. They become capable of discriminating between good and evil. Thus, they abandon the mental make-up

of a heron and become Swans, for a Swan has the faculty of separating milk from water. The next line is, "Even a crow can become a Cuckoo". Cawing of a crow is very disp easing for the human ear. But Sat Sang turns it into a Cuckoo's song. It means, that after Sat-Sang, man stops uttering unpleasant words. He starts speaking sweet, and is welcomed and liked by all, like a Cuckoo.

During his very life-time, he attains his heart's desire
Let him ask of God, whatever boon he pleases.

Remember always, that whatever yon get, is the result of your own thougts and deeds. "As you think, so you become; as is your faith, so is your fate; and as you sow, so do you reap". These are the words of my Preceptor Hazur Data Dayal Ji Maharaj.

When a man develops his understanding. his volition, his thoughts change. Due to change in thoughts, his life takes a turn for the better. Numerous people come to me and then go and give me a lot of publicity; "Baba Ji has done this,

Baba Ji has done that". I swear and say, that I do nothing. I simply give them hopeful, encouraging and optimistic thoughts. I remove their pessimism and negative thinking. On my own I do not bring about any miraculous change in them. It is only their own positive thought, that changes their life. So, Sant-Sang is something most important.

If there be any who be desirous of
Edification Economic upl·ft,
Enjoyments, and Emancipation
Let him then run and resort to Sat Sang
Which is the Prime Place of Pilgrimage.
God's Grace will then rain on you
And your heart's desires will be ulfilled,
Remain ever awake and ever alert
In Guru's Company.

People come for Sat-Sang, but they soon doze and fall asleep. They do not listen to what is being said in the Sat-Sang. Such people again nothing from the Sat-Sang. "Ever-awake in Guru's company' means, that when you go to Sat-Sang, listen to him attentively and continuously gaze at

his face without winking your eyes. So long as you see him intently, the energy and radiation emanating from his eyes, and from his lips and face will enter your body and mind through your eyes and ears, and shall edify you by cleansing your mind. Eyes are the most important media to convey and receive the inner feelings.

Therefore it is said—

Behold the eyes and the Forehead of a Saint
And gaze at him continuously,
Then you will absorb the LIGHT emanating
from him.

While sitting in the Sat-Sang, always gaze at the eyes of the Saint. Fools scoff at Sat-Sang, but the deserving aspirants digest the discourse in their minds, and remain to pray. So, only true aspirants should come for the Sat-Sang The sight of a Saint or even a chance glance transforms the life of a true and honest seeker. Eyes have the greatest quality of transmitting one's inner feelings, thought-currents and radiations. At the time of love, they are of one type, whereas in anger thy are of quite a different type. You may not speak even

a single word, but your eyes. by a stern stare, can frighten anybody. So, in order to receive the inner energy of a Saint, you should gaze at his forehead and eyes. Not only his energy and radiation, but also his qualities of head and heart will travel into you through the windows of your eyes.

To me, you are my dear brothers. I have my heart-felt sympathy for you. I am thinking as to how can I do any good to you ? I am not a magician. I cannot enchant. Whatever I have experienced and understood out of life. I speak out to you, but at the same time I do not claim that, whatever I say is the final word on any subject. Whatever reseach I have done so far, I narrate to you. I do not decieve anybody. I am obeying my Preceptor to the bes of my ability. I am free from all worldly responsibilities. Now my "Self" is without any heavy burden upon it. No "negative pull" pulls me yet I know not, where I shall go after death.

All are bound to part and depart
None shall stay on and stick on
This is the positive TRUTH—

True cent per cent !

There fore I say unto you all.
Better do today what you have to do tomorrow.
For "Today" is the "present" held in your palm—

It is in your grip, in your grasp.
"Tomarrow" belongs to TIME,
The Great Leveller like DEATH,
The sands trickle down
Faster than your eye can catch them
The "compound interest" that you have to pay
On the "Time Drawn" is mounting every moment.

Beware ! you are neither paying off your debt
Nor are you investing your Time in God's Bank.
Nor laying up your treasure in heaven.
Behold ! and Beware !
Death, like a lightning flash, will come and claim you any minute, any moment.

I have paid up the debts that I had piled up. I am happy and relaxed. "'TIS FINISHED" ! Thank God. I came at this occasion of Kumbha and have spoken to you about my experiences.

If any one of you thinks that my work is useful for mankind, he may help in the publication of my these observations on the Sanatan Dharam and the Path and the Science of the Saints.

What is Guru's real service ? Proclaim by Practice the Precepts of the Preceptor. Guru does not mean Mr. Faqir Chand who sits before you as a lump of flesh and bones. If you propagate my person it will only result in an all-round misery. So you please propagate the preachings of the Guru. Spread the knowledge that he imparts to you. Guru is not a human-being Mr. So and So, but it is "Realisation". This realisation is given to us by Sanatan Dharam, by Radhaswami Dayal, by Data Dayal, by kabir by Nanak, by Dadu, by Paltoo. I have changed the mode, the method of Explanation of that Realisation, of the manner of its presentation. I am presenting only the old wine in new bottles, and with new lebel, in order to attract the buyers, and seeker. If you wish to serve me, spread my WORD. If my put some one on the right path and save him from exploitation, I do not need money from you. Though

I have founded the "Manavta Mandir", yet it is not my personal property. I have tried to remove the religious differences between man and man in order to bring mankind on the right Path, so that people may live a happy life of Peace, Progress and Prosperity. I have explained to you the ART OF LIVING a happy life, No it is upto you to accept it or reject it.

MY PEACE BE UNTO YOU ALL.

Four Dimensional Philosophy Of Indian Thought and Plotinus

BY

H. H. Hazur Manav Dayal

Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

The Upanishads, as stated earlier, regard Atman (the Self or Purusha)—man as exactly miniature Brahaman. The gradation in the case of Brahman from Avyaya to Visvasrit is from subtle and most fundamental to less subtle and dependent as already stated. In the case of man, called Adhyatma, the gradation if from the most subtle to the most gross. Based on this fourfold cosmic metaphysics and human nature, are the fourfold social, ethical and

philosophic systems in the Vedas, the Upanisads and the Bhagavadgita. Unlike Plato, the social system in the Vedic tradition is not threefold, but fourfold, because of the spiritual, the intellectual, the mental, and the physical aspects. The fourfold values parallel to Platonic virtues are Artha (economic value), depending on temperance; Kama (love), depending on courage and temperance, Dharma (ethical duty), depending on justice and courage; and Moksha (spiritual perfection), depending on wisdom. The Upanishads also state the fourfold nature of knowledge, based on the four levels of Jagrat (waking consciousness), Svapna (dream consciousness); Susupti (deep sleep consciousness or unconsciousness); and Turiya (supra-consciousness, associated with the spiritual self, the causal self, the mental self and the physical self, restrospectively). The word Cit (consciousness) applies both to waking and dream consciousness and the word Acit (unconsciousness) as the ground of Cit (consciousness), is not to be understood as devoid of consciousness. The word Turiya is beyond the concept of Cit and Acit. Incidently, Plotinus's

gradation of the stages from the physical to the level of the One, so far as soul's journey back to the One is concerned, seems to be paraliel to this hierarohy.

It seems important to mention that the philosophy of the Bhagavadgita propounds four, not three paths, as it is commonly believed. These four paths or the methods, the Yogas, of attaining enlightenmen are : the Buddhi Yoga, corresponding to the spiritual aspect of man (the Buddhi here may mean Nous, which is closer to the One); Jnana Yoga, corresponding to the intellectual or rational aspect, Bhakti Yoga, corresponding to the mental aspect; and Karma Yoga, corresponding to the physical nature of man. It is Pertinent to point out that the first six discourses of the Bhagavadgita are devoted to the Buddhi Yoga, the seventh and eighth discourses explicate the Jnana Yoga, the ninth to twelfth discourses explain the Bhakti Yoga, and the last six discourses expound the Karma Yoga.

This four dimensional trend of methaphysics ethics, Sociology, and practical spirituality in Indian Thought is undoubtedly based on the mystic experi-

ence, of the One Ultimately Reali y as experiencial and is not a figment of imagination. The same explanation applies to the Poltinian metaphsics.

The One propounded by Plotinus as the basis of the Intelligence—Nous, the World Soul and of Matter, is not a more imagination, but that experiencible indestructibility and everlastingness which pervades everywhere and in every being. It would be appropriate here to compare the notions of Matter and Brahman in both tne Hindu tradition and Neoplatonism. The Isopanishad says "All this living and non living (existence) is permeated with Isa (God as Supreme Being), hence the way to the Supreme is to enjoy everything with an attitude of nonattachment".

According to Plotinus this everlastingness is present in Matter or Nature as well as in the Soul and Nous. While defining Matter Poltinus says "Matter then, makes the greatest contribution to the formation of bodies.....so here in the material world, the many forms must be in something which is One.....we can see that this is so because in our present experience things that are mixed

together come to identity by having matter, and there is no need for any other medium, because each constituent of the mixture comes bringing its own Matter".

The Bhagavadgita very clearly points out that the One indestructibility is immanent everywhere—

"Know thal (Being) to be indestructible in which every thing is rooted; no one is capable of annihilating It".

Further, the substrate according to the Bhagavadgita is both potential and actual Being and becoming as coexistent ontologically—

Nasato Vidyate Bhavo
Nabhavo Vidyate Satah
Ubhyorapi Drish'o Anath
Tunyo Tatva Darshibhi.

That is :

Non being can't exist,
Nonexistent can't be;
The seers have accepted,
This ontology.

Amazingly, Plotinus as well arrived at this ontological notion of the substrate. He says :

"One speaks of potential and actual existence; and one speaks of actuality in the class of existing things. We must consider therefore what potential and what actual existence, is ? Is actuality the same as actual existence, and if anyt hing is actuality, is it also actuallyexistent, or are the two different and is it not necessary for that which is actually exi ting to be actuality ? Further, it is clear that there is potential existence in the World of Things perceived by the senses.....we must not speak of potential existence simply; for it is not possible to exist potentially without being potentially anything... It is better and clearer to use 'potential existence' in relation to 'actual existence' and 'potentiality' in relation to 'actuality' ".

It looks as if Plotinus is providing intellected explanation of the intutively discoved nature of the substrate as both being and becoming or being and existence—po entiality and actuality. As a matter of fact his notion of the substrate was an intutive discovery rather than an intellectual construct.

This very substrate, is the receptacle of all. In the words of Plotinus, "What is called "matter" is said to be some sort.....of "substrate" and "receptacle" of forms..... As for the question

whether intelligible matter is eternal, ... intelligible realities are originated in so for as they have begining, but unoriginated because they have not a begining in time; they always proceed from something else, not as always coming into being like the universe, but always existing, like the universe There.

Thus Plotinus points out that all the individualities arise from the unmenifested substrate and that this substrate is the matrix of all the experiences of the senses and of the mind. The Bhagavadgita calls this nature as the lower nature, "Apara-Prakrati". So far as the substrate of the individuality is concerned, this nature is called Avyakta or unmenifested material ground known as Pradhan is Sankhya system and Avyakta in the Bhagavadgita— "Avyaktat Vyaktyaayah Sarva Prabhavanti". That is "all the individualities arise out of the unmanifested substrate".

As lower nature Apara Prakrti, this substrate has been beautifully expressed in the Bhagavadgita— ' Bhoomirapoanalo Vaya Kham Mano, Budhirevacha Ahankara Itiyamme Bhinna Prakritirashashtadh".

That is, earth, water, fire, air, space (ether)

mind, intelligence and ego are the eight diffeient types of Nature. It is further stated that these are the lower natue which are dependent upon and rooted in One Supreme Brahaman. The point to be notcd here is that the immanance of the one Ul imate Being in all the levels of existence from Matter to Nous and vice versa in the case of Plotinion philosophy and from the Avyaya to Vishvasrit and vice versa in the case of Indian Thought, has been propounded solely on the basis of immediate intuitive and mystic experience. This fact must be highlighted in the context of comparative study of Plotinus and Indian Thought especially because Plotinionism is a unique expression of Plotinus' Four dimensional Philosophy. Any imposition of the influences on Plotinus would be cut of place.

It is claimed that Plotinus's teachings were the culmination of ancient Greek and Roman philosophy, since Plotinus followed chronologically Plato and his immediate successors But this culmination was not a mere summary of what the previous writers have stated. It may be granted that Plotinus's ideas derived their inspiration from Plato, whose philosophy he throughly studied. The greatness of his teaching, however does not depend on his

study of Plato nor on the observations of contemprorary Christian traditions. Plotinus's philosophy was primarily the outcome of his personal inner experience and his spiritual development. His own intuitive experience, his meditation and the glimpses of the divine light, led him to his fundamental convictions, concluding that God is the source of all existence.

Plotinus's cosmology reveals the presence of individual differences and plurality of souls in the spatiotemporal world, emanating from one God, who is Himself infinite and undifferentiated. This One is also the Supreme Good, identified with the light above light. Beyond this however, he tried to avoid the use of any postive concept to define God, lest it conceptually limit him. Human soul individuates from the World Soul, which itself is an emanation from the infinite God. Before being incarnated, the soul was in a state of constant contemplation of the eternal Nous (Mind), and had complete knowledge of the good. Having separated from God and descended into the material world, it is now on its journey back to God passes through various births; in this ascent towards its Supreme Source. In the state of ecstasy, the soul is raised

above all limitations and merges with the Soul of God. Only thus reunited with its source can the soul retain true knowledge. These ideas cannot be labeled as the mere summary of theoretical study of Plato or Aristole on the part of Plotinus. Rather, they are the expression of intutive inner expriences arising from the link of the individual consciousness with the cosmic current !

When the intution is h nored, and when the inner experience corroborates with the external observation, the diversity is understood in its right perspective. Differences and duality are not abolished, but an insight into the inderlying unity weaves a coherent and consistent pattern into the differences. Truth is then established as an organic whole of various interrelted parts, which are neither mutually exclusive nor absolutely independent. Reality is fundamentally One and essentially Eternal.

राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी, राधास्वामी राधास्वामी ।
अलख अगम और अनामी ।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ।
परमसन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥
बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर।
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी ॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥
राम भी हो और कृष्ण भी तुम ।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम ।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी ॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार
ऐसे गुरु जी को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि ॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥
दाता दयाल के प्यारे तुम, मानव के रखवारे तुम।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी ॥
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी ॥

BOOK POST

Regd No. 26265/74 SEP 10th 1996

MANAV MANDIR PB HSP—5

Addressed

2752. Sh. T. Bahadur Singh,
6-2-99. Chaurasta,
H/E HANAM KONDA. 506011. (A.P)

MANAVATA MANDIR
SUTEHRI ROAD PHONE : 22639
HOSHIARPUR 146001

Satv Dev Rao pram Manavta Mandir (pb.)